वनस्पति वाणी

वर्ष 17 सितम्बर 2007 अंक 16

वसुधेति च शीतेति पुष्पदेति धरेति च
नमस्ते सुभगे देवि द्रुमोऽयं वर्धतामिति

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

© भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, 2007
इस प्रकाशन का कोई अंश निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के लिखित पूर्वानुमति के बिना पुनर्प्रवर्तित/रिट्रिवल पद्धति से भण्डारण या इलेक्ट्रानिक, मेकेनिकल फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य किसी तरीके से ट्रांसमिट नहीं किया जा सकता है।

डा. एम संजप्पा : संरक्षक
डा. देवेन्द्र कुमार सिंह : प्रधान सम्पादक

सम्पादक मण्डल
डा. परमजीत सिंह
डा. प्रतिभा गुप्ता
श्री नवीन चौधरी
श्री थान सिंह

- वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, प्रामाणिकता एवं व्यक्त विचारों के लिए लेखक उत्तरदायी है।

- इस अंक के प्रूफ संशोधन, मुद्रण क्रम में हिन्दी एवं प्रकाशन अनुभाग के सभी कर्मचारियों ने सक्रिय सहयोग प्रदान किया है।

आवरण चित्र :
अपर सुबनसिरी नदी एवं सदाबहार वन, अरुणाचल प्रदेश
छाया :
कुमार अम्बरीष

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सी. जी. ओ. कॉमप्लेक्स, साल्ट लेक, कोलकाता - 700 064 द्वारा प्रकाशित एवं मे. इम्प्रींटा, 243/2 बी, ए.पी.सी. रोड, कोलकाता - 700 006 द्वारा मुद्रित।

विषय सूची

1.	कार्ल लिनियस	:	मु० संजप्पा एवं परमजीत सिंह, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता	1
2.	पश्चिमी हिमालय की जैव विविधता का प्रतिनिधित्व करता एक संरक्षित क्षेत्र –ग्रेट हिमालयन राष्ट्रीय उद्यान	:	देवेन्द्र कुमार सिंह एवं सुशील कुमार सिंह	5
3.	पोंग डैम (महाराणा प्रताप सागर) नम भूमि-रामसार स्थल	:	सुनील कुमार श्रीवास्तव एवं देवेन्द्र कुमार सिंह	9
4.	नेलीपू	:	आर. सी. श्रीवास्तव	13
5.	नोथापोडाइटिस निमोनियाना–एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधे का संरक्षण व विस्तार	:	ए. ए. अन्सारी, ए. के. साहू व जी. के. उपाध्याय	17
6.	नील हरित शैवाल विविधता का जैव प्रौद्योगिकी में योगदान	:	एस० एल० गुप्ता	18
7.	बैरिंगटोनिया एशियाटिका–समुद्रतट की रानी	:	विनोद मैना एवं जी. वी. एस मूर्ति	21
8.	गान्तोक का सुन्दर आर्किड डेन्ड्रोबियम काईसेन्थम	:	ए. ए. अन्सारी एवं ए. के. साहू	23
9.	तवांग जिले की वनस्पति-विविधता	:	एच. एस. महापात्र एवं आर. सी. श्रीवास्तव	24
10.	विशाल समुद्री खजाना–समुद्री शैवाल	:	सोनाली पिवलटकर एवं पी. एस. एन. राव	27
11.	जैट्रोफा (Jatropha)	:	आर. के. गुप्ता, ए. के. बैश्य एवं श्याम किशोर महतो	29
12.	मूगा रेशम उद्योग में लिट्सिया की भूमिका	:	तृणा भुंइया एवं परमजीत सिंह	32
13.	'पीपल' सेल्यूलर जेल का एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक वृक्ष	:	राजेन्द्र प्रसाद पाण्डे एवं जी. एस. लकडा	34
14.	एजोला पिन्नाटा एवं एनाबिना एजोली का सहजीवन तथा उपयोगिता	:	प्रतिभा गुप्ता एवं शिव कुमार	36
15.	भेषज विज्ञान : आयाम और संभावना	:	ए. बि. डी. सेलवम एवं नवीन चौधरी	39
16.	भारत से निर्यातित प्रमुख औषधीय पौधे	:	विनय रंजन एवं सुशील कुमार सिंह	41
17.	सम्भालू (वाइटेक्स निगुन्डो) : पौधा एक गुण अनेक	:	हरीश सिंह 'भुजवान'	44
18.	अपर सुबनसिरी के तागिन जनजाति का पारम्परिक वनस्पतिक ज्ञान	:	कुमार अम्बरीष	47

19. बंगाल में चौदह शाक, उनके उपयोग व घरेलू उपचार	:	आंखी साऊ व छवि घड़ा	51
20. असम के अल्प ज्ञात दस शाकीय स्वजात साग पौधे	:	राजीव गोगोई एवं रनजित दैमारी	54
21. प्रायोगिक वनस्पति उद्यान, शिलांग	:	विपिन कुमार सिन्हा	57
22. वन ककड़ी : कैंसर चिकित्सा का प्राकृतिक विकल्प	:	एम. के. पाठक व मानस भौमिक	59
23. भारत में बिगोनिएसी कुल – एक अवलोकन	:	एमाद उद्दीन	61
24. मेघालय के पावन वन (सेक्रेड ग्रूव) : एक वैज्ञानिक अध्ययन	:	बिकारमा सिंह, बिपिन कुमार सिन्हा, विवेक नारायण सिंह एवं टी. एम. हिनयूटा	64
25. हमारी वनस्पतिक धरोहर : गोंद वाले वनपादप	:	बिपिन कुमार सिन्हा, रमेश कुमार, विवेक नारायण सिंह एवं बीरेन्द्र कुमार शुक्ला	74
26. दाम्फा बाघ जीव अभयारण्य की वन एवं वनस्पतियां	:	विपिन कुमार सिन्हा एवं एन. ओडिओ	84
27. भारतीय हरितोद्भिद्की (Bryology) के प्रेरणास्त्रोत–स्व० प्रो० राम उदार (1926-1985)	:	सुशील कुमार सिंह	86
28. धार्मिक समारोह की उपयोगी वनस्पतियाँ एवं उनका संरक्षण	:	बिपिन कुमार सिन्हा एवं विवेक नारायण सिंह	88
29. हिमालय की पीड़ा	:	नन्दलाल तिवारी	92
30. ''विशाल रेत का पहाड़'' एक अविस्मरणीय अनुभव	:	सोनाली श्री पिवलटकर	94
31. रक्तचाप के निदान में सहायक औषधीय पौधे	:	अनन्त कुमार	96
32. भारतीय वनस्पति उद्यान स्थित प्रमुख स्मारक	:	नन्दलाल तिवारी	99
33. पर्यावरण समाचार (संकलन)	:	संजीव कुमार	104
34. ''जिसकी लाठी उसकी भैंस''	:	भगवती प्रसाद उनियाल	106

कार्ल लिनियस

मु० संजप्पा एवं परमजीत सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

स्वीडन के वनस्पतिज्ञ कार्ल लिनियस सूचना क्रान्ति के अग्रदूत थे। वे चाहते थे कि हर पौधे एवं प्राणी का नामकरण तथा वर्गीकरण हो। उन्होंने स्वयं प्राणियों की लगभग 4400 एवं पौधों की लगभग 7300 जातियों का नामकरण किया।

23 मई 1707 को स्वीडन के एक गाँव स्टेनब्रोहट में उनका जन्म हुआ। उनके पिता निल्स लिनियस शौकिया वनस्पतिज्ञ और उद्यानप्रेमी थे। विश्वविद्यालय में नामकरण हेतु उन्होंने एक उपाधि गढ ली। स्वीडन की भाषा में 'लिंड' का अर्थ है 'लिंडेन (मालवेसी कुल में टीलिया जाति) टीलिया वृक्ष'। निल्स लिनियस को पेड़-पौधों से प्रेम था। कार्ल का जन्म होने पर उसके पलने को फूलों से सजाया गया।

कार्ल कुछ बड़ा हुआ तो उसके हाथ में फूल देने से उसे सकून मिलता था। प्राकृतिक सुन्दरता एवं विविधता के क्षेत्र में उसने फूलों के माध्यम से प्रवेश किया। कच्ची उम्र में ही उसे यह भी आभास होने लगा कि उनमें अर्थ की गंभीरता भी छिपी है।

फूल और पौधों के साथ कार्ल की उनके नामों में भी रूचि जाग उठी। जंगली फूल चुनकर लाता, और पिता से उनके नाम पूछता। शैशव अवस्था की चपलता के कारण उन नामों को अक्सर भूल जाता। उसके भुलक्कड़ स्वभाव से तंग आकर पिता ने कहा कि यदि इस तरह भूलता रहा तो वे अब फूलों के नाम नहीं बताएँगे। अब वह तत्परता से फूलों के नाम याद रखने लगा जिससे वह उनके नाम जानने के परम सुख से वंचित नहीं हो। फूलों के नाम के साथ उनके बारे में और जानकारी याद रखकर कार्ल वैज्ञानिक परिपक्वता की ओर बढते रहे। अपने जीवन में उन्हें प्रचुर ख्याति मिली। उन्हें स्थायी महत्व दिया गया। इसका कारण उनका महान वनस्पतिज्ञ होना ही नहीं था। वे सहजता से नाम गढते और उसे याद रखते थे।

उनकी जीवनी, विश्वकोश, वेबसाइट आदि में कुछ ऐसी सूचना मिलती है। वे ''टैक्सनॉमी के जनक'' अथवा जीववैज्ञानिक वर्गीकरण के आदिपुरुष थे। जातियों के नामकरण में उन्होंने लैटिन द्विनामी (binomial) पद्धति बनायी जो आज भी प्रचलित है। ये मोटे तौर पर सही है। लेकिन इनमें वे बाते नहीं आती जो उनके अपने समय और बाद में भी जीवविज्ञान को इतना महत्वपूर्ण बनाती है। आप पढेंगे कि अपनी जाति के लिए उन्होंने होमो सेपिएंस (Homo sapiens) नाम देकर दुस्साहसपूर्वक उस स्तनपायी श्रेणी में रखा जिसमें बन्दर एवं लंगूर है। यह भी सत्य है परन्तु इसमें भ्रान्ति की आशंका है। लिनियस विशुद्ध विवर्तनवादी (evolutionist) नहीं थे। जीववैज्ञानिक उद्भव में वे प्रचलित सृष्टिवादी (creationist) पक्ष में थे। इसमें यह

धारणा थी कि प्रकृति के अध्ययन से जाहिर होता है कि ईश्वर में सृष्टि क्षमता एवं रहस्यमय क्रमबद्धता निहित है। वे इतने धार्मिक (धर्मभीरू) नहीं थे कि भौतिक जगत में मात्र ईश्वरत्व ढूंढते।

प्राकृतिक विविधता के संचय में वे किसी दैवी मतवाद का संपोषण नहीं कर रहे थे। अपने मानस में वे इसे तिल तिल कर संजो रहे थे। वे चाहते थे कि पृथ्वी पर जितने प्रकार के जीव हैं उन्हें खोजकर उनके नाम दिए जाएँ, उनकी गणना हो, उन्हें अच्छी तरह समझा जाए।

इसके लिए दो बातें आवश्यक थी : उनका अथक और तीक्ष्ण अवलोकन तथा एक पद्धति। अपने पचीसवे जन्म दिवस से ठीक पहले 1732 के बसन्त में लिनियस लैपलैंड होते हुए एक अभियान पर निकले। स्वीडन राज्य के उत्तरी वन्य क्षेत्र में थोड़े से सामी लोग रेंडियर की तरह झुण्डों (कबीलों) में रहते थे। अगले पाँच महीनों में उन्होंने घोड़े पर, नाव में और पैदल चलकर 3000 मीलों (4800 कि. मी.) की यात्रा में संग्रह किए, नोट लिये। पक्षी, कीड़े, मछली, भूगर्भविज्ञान, सामी लोगों के रीति-रिवाज, तकनीक सभी में उनकी रूचि थी–लेकिन पौधों में सर्वाधिक। अपने जर्नल्स में उन्होंने चित्रांकन किए जिनमे कुछ साफ सुथरे नहीं थे। परन्तु कुछ पौधों के उन्होंने हू-व-हू चित्रांकन किए। आखिर उन्होंने एक पुस्तक प्रकाशित की ''फ्लोरा लैप्पोनिका''–अपने संग्रह किये हुये वनस्पतिय आँकड़ों के विवरण।

1735 में वे अपनी जीविका को एक दिशा देने के लिए विदेश गये। तीन वर्षो के प्रवास में उनका अधिकांश समय हालैंड में बीता। वहाँ उन्होंने चिकित्सक की डिग्री ली और पुनः पौधों पर ध्यान देने लगे।

उन दिनों वनस्पति विज्ञान को चिकित्सा विज्ञान की एक शाखा माना जाता था। पेड़-पौधों में भेषज गुण विद्यमान है। डच इस्ट इंडिया कम्पनी के एक निर्देशक जार्ज क्लिफोर्ड ने हार्लेम के निकट अपने यहाँ उन्हें वनस्पति क्यूरेटर एवं घरेलू चिकित्सक का काम दिया। वहाँ काम करते करते लिनियस ने क्लिफोर्ड के वनस्पति सम्पदा (holdings) का विवरण लिखा ''होर्टस क्लिफोर्डिएनस''। जॉर्ज डायोनिसिअस इहरट ने इसका चित्रांकन किया।

लिनियस ऊर्जा से भरपूर थे ओर उनके पास योजनाएँ थी, धारणाएँ और मान्यता थीं। उनमें ज्ञान ओर सफलता की ललक थी। वे लोगों को आसानी से मित्र बना लेते थे, प्रायोजक ढूढ लेते थे, ऊँचे से ऊँचे सम्पर्क स्थापित कर लेते थे। आठ साल के अपने प्रवास काल में उन्होंने आठ पुस्तकें प्रकाशित की। स्वीडन से चलते समय वे कुछ पाण्डुलिपि लेकर चले थे। उनमें एक पाण्डुलिपि थी ''सिस्टेमा नैचुरे'' (Systema Naturae) जिसे आज आधुनिक टैक्सनॉमी का आधार ग्रन्थ माना जाता है।

प्रकृति के क्रमबद्धता की दिशा में प्रयास करने वाले लिनियस पहले प्रकृतिवादी (naturalist) नहीं थे। अरस्तू ने जीवों की दो श्रेणी की थी–रक्त रहित एवं रक्त युक्त। लियोनहार्ट फूक्स ने सोलहवीं शताब्दी में पौधों के 500 जेनेरा की वर्णानुक्रम में तालिका बनाकर उनके वर्णन किए। 1686 में प्रकाशित जॉन रे की ''हिस्टोरिया प्लेंटेरम'' से जातियों की धारणा को परिभाषित करने में मदद मिली। जोसेफ पिट्टोंडि टोर्नफोर्ड ने पादप जगत को 700 जेनेरा में विभाजित किया। विभाजन के आधार थे फूल, फल एवं अन्तः रचना के अन्य भाग।

इस परम्परा को लेकर लिनियस आगे बढ़े। 1735 में प्रकाशित उनकी ''सिस्टेमा नैचुरे'' में लगभग एक दर्जन पृष्ठ थे। इसमें उन्होंने पोधे, प्राणी एवं खनिज के वर्गीकरण पद्धति को रेखांकित किया। सजीव के बारे में उनकी मान्यता महत्वपूर्ण थी।

प्राणियों के लिए उन्होंने जो तालिका बनाई उसमे 6 मुख्य स्तम्भ थे : क्वाड्रूपेडिया, एव्स, एम्फिबिया,

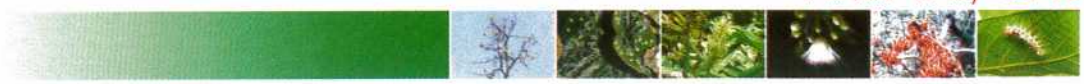

पिसेज, इंसेक्टा, वर्म्स। क्वाड्रूपेडिया (चौपाया) को भी कई श्रेणियों में बाँटा गया। एम्फिबिया में जल प्राणियों के साथ सरीसृप (उरग) को भी रखा गया। वर्म्सकी श्रेणी में कीड़ों के साथ छोटे समुद्री जीव-जन्तु भी आ गये। सभी श्रेणी को पुनः जेनेरा में बाँटा गया। इनमें कुछ परिचित नाम भी थे, जैसे–लियो, उर्सस, हिप्पोपोटेमस, होमो। जीनस को पुनः जातियों में बाँटा गया। छ श्रेणियो के अलावा लिनियस ने आधा स्तम्भ दिया पैराडोक्सा को। ऐसे जीव-जन्तु जो दन्तकथाओं या किंवदन्तियों में आए हैं। तालिका के शीर्ष पर लिखा था CAROLI LINNAEI REGNUM ANIMALE । उनका यह अनंतिम प्रयास भव्य था किन्तु मौलिक नहीं। उस समय तक जो जानकारी उपलब्ध थी उसके आधार पर प्राणी विविधता को प्रणाली में बाँधने का प्रयास उन्होने किया था। वैसे वे प्राणियों के विशेषज्ञ नहीं थे।

उनकी रूचि पेड़-पौधों में थी। पेड़-पौधों का उनका वर्गीकरण मौलिक, व्यापक, क्रमबद्ध था। इसका नाम दिया गया लैंगिक पद्धति (sexual system) । फूल लैंगिक संरचना है। उन्होंने उनके नर एवं मादा अंगों के उपयोग किये। इससे विभिन्न समूहों की पहचान सुनिश्चित हुई। 23 वर्गो को परिभाषित करके उन्होंने उनमें सभी पुष्पी पौधों को रखा। 24 वाँ वर्ग था क्रिप्टोगेम्स–अपुष्पी पौधे। यह वर्गीकरण संख्या, आकार तथा स्टेमेंस के विन्यास पर आधारित था। बाद में उन्होंने पिस्टिल्स के आधार पर उपवर्ग बनाये उन्होंने वर्गों के नाम दिये मोनेंड्रिया, डायाण्ड्रिया, ट्राईण्ड्रिया (अर्थात् एक पति, दो पति, तीन पति)। उनके दिये हुए कुछ ऑर्डिनल नाम इस प्रकार थे–मोनोजिनिया, डाईजिनिया, ट्राईजिनिया। इन नामों पर उस समय तीव्र प्रतिक्रिया हुई। बहुत लोग उनसे सहमत नहीं थे। तथापि पादप वर्गीकरण की इस पद्धति को पूरे यूरोप ने स्वीकार किया।

लिनियस के 24 वर्गों का मनोहर चित्रांकन कर जॉर्ज इह्रेट ने उन्हें लोकप्रिय बनाया। वे चित्र काफी बिके और इह्रेट को अच्छी आमदनी हुई। बाद में लिनियस ने अपनी एक पुस्तक में इह्रेट का आभार प्रकट किए बिना उन चित्रों को शामिल किया। लेकिन वे इह्रेट की वनस्पतीय धारणा को ठीक से समझते थे।

स्वीडेन लौटकर उन्होंने विवाह किया और उपसला (Uppasala) विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बने। उन्होंने 'सिस्टेमा नैचुर' (Systema Naturae) का परिशोधन-परिवर्द्धन किया। अन्य पुस्तकें भी छपती रहीं, जैसे –'स्वेडिश फ्लोरा' (1745), 'फिलोसोफिया बोटेनिका' (1751) तथा 'स्पेसिज प्लेंटेरम (1753)।

'फिलोसोफिया बोटेनिका' में उनकी मान्यताएँ स्पष्ट हुई। जैसे :–वनस्पति विज्ञान की आधारशिला के दो परत हैं, क्रमबद्धता एवं नामकरण। पौधों को वर्गों-उपवर्गों में क्रमबद्ध करना तीन कारणों से निर्णायक हैं। पौधों के कई प्रकार हैं। लिनियस के युग में व्यापक गवेषणा चल रही थी। पौधों के वर्गीकरण से उनकी जानकारी प्राप्त करना आसान होता है। जेनेरा की संख्या 500 तक होने से वर्णानुक्रम (alphabetical) तालिका उपयोगी हो सकती थी। जातियों की संख्या हजारों में चले जाने पर उसकी उपयोगिता नहीं रही।

लिनियस चाहते थे कि पौधों के समूहों को ''प्राकृतिक पद्धति'' से खोजा जाए। इससे ईश्वर की जैवीय सृष्टि का रहस्य सामने आ सकता है। न्यूटन ने इस तरह ईश्वर के भौतिक गणित का साक्षात किया। लिनियस जानते थे कि उनकी बनायी पद्धति प्राकृतिक नहीं कृत्रिम है। लिनियस यह नहीं समझ रहें थे कि जातियों के प्राकृतिक वर्गीकरण में विवर्तनवाद (evolutionary descent) आधारित उनके सम्बन्धों के परिमाण निहित है। प्राकृतिक क्रम जानने की उनकी उत्कण्ठा से वे टैक्सोनामी को दिशा देते रहे। बाद में इसका लाभ चार्ल्स डारविन को मिला।

नामकरण की बात भी कुछ ऐसी ही है। यदि आप किसी वस्तु का नाम नहीं जानेंगे तो उस वस्तु के बारे में आपका ज्ञान लुप्त हो जाएगा। वर्गीकरण की तरह नामकरण में भी समस्याएँ आने लगीं। पुरानी प्रणाली से नामकरण अब अत्यन्त जटिल होता जा रहा था। ''स्पेसिज प्लेटेरम''में लिनियस ने पौधों के नामकरण में

द्विनामी (binomial) प्रणाली अपनाया। बाद में उन्होंने यह प्रणाली पौधे और प्राणी दोनो पर लागू किया। इससे नामकरण में सुविधा हुई। जैसे मनुष्य का नाम हुआ ''होमो सेपिएन्स''।

वे बहुत अच्छे अध्यापक थे, बोलने की शैली अच्छी थी और आश्चर्यजनक स्मरण शक्ति थी। अब पौधों के संग्रह के उनके अभियान में जश्न जैसा माहौल दिखने लगा। अपने प्रतिभाशाली छात्रों को उन्होंने ऐसी शिक्षा दी कि वे अपनी गवेषणा के आँकड़े एवं नमूने बूढे लिनियस को भेजते रहते थे। उनका कद इतना बढा कि वे सबसे विख्यात प्रकृतिवादी हो गये।

भाषाओं का ज्ञान तथा भोगोलिक अनुभव सीमित होने पर भी लिनियस वनस्पतिजात-प्राणीजात के विश्वकोश हो गये। संसार के अनेक प्रकृतविदों से उनके पत्राचार होते थे। उनकी श्रद्धालु शिष्यमण्डली नमूने भेजती थी, वे उनका वर्गीकरण करते थे।

कठिन परिश्रम के दुर्गम पथ चलते हुए 10 जनवरी 1778 को उनकी मृत्यु हुई। छः वर्षो के बाद जेम्स एडवर्ड स्मिथ ने लिनियन सोसाइटी ऑफ लंदन की स्थापना की। इसमें उनके पुस्तकालय, पाण्डुलिपि तथा अधिकांश संकलन रखे हैं।

वर्ष 2007 में दुनिया भर में कार्ल लिनियस के 300 वी जन्म वर्ष के उपलब्ध में कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं। यह कार्यक्रम मुख्यतः बच्चों और युवाओं में विज्ञान और प्रकृति के प्रति उत्सुकता एवं नई सोच को बढ़ावा देने के लिए अग्रसर होंगे।

ग्रेट ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया एवं इटली मे विभिन्न प्रकार के आयोजन से भव्य लिनियस त्रिशताब्दी मनाई जा रही है। सबसे बड़ा आयोजन उनके देश स्वीडन में 17 मई से 27 मई तक क्रोनोबर्गस काऊंट्री एवं उपसला में मनाया गया।

———————

पर्यावरण सुरक्षा का सपना
यदि होगा मन में।
मानव मस्तिष्क उन्नत होगा
कोई न रोग तन में।।

स्वच्छ हवा शुद्ध हो पानी।
स्वस्थ रहेगा हर कोई प्राणी।।

पश्चिमी हिमालय की जैव विविधता का प्रतिनिधित्व करता एक संरक्षित क्षेत्र –ग्रेट हिमालयन राष्ट्रीय उद्यान

देवेन्द्र कुमार सिंह एवं सुशील कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में अगर हम किसी एक ऐसे क्षेत्र की कल्पना करें । जो कि अपेक्षाकृत कम छेड़छाड़ वाली पारिस्थितिक प्रणाली का प्रतिनिधित्व करता हो तथा जैविक विविधता से भरपूर हो तो वह है ग्रेट हिमालयन राष्ट्रीय उद्यान।

ग्रेट हिमालयन राष्ट्रीय उद्यान हिमाचल प्रदेश के कल्लू जिले में 31° 38 28 से 31° 51 58'' तक उत्तरी अक्षांश एवं 77° 20 11 से 33° 45 52'' तक पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है। यह राष्ट्रीय उद्यान समुद्र तल से 1344 से 6632 मी० की उँचाई पर स्थित लगभग 754 वर्ग कि० मी० क्षेत्र में फैला हुआ है। अगर हम इसके बफर जोन को भी शामिल करें तो इसका क्षेत्रफल बढ़कर 1171 वर्ग किमी० हो जाता है। इसकी दक्षिणी पूर्वी सीमा रूपीभाभा वन्य-प्राणी शरण्य की सीमा से लगी तथा पूर्व में पिन घाटी राष्ट्रीय उद्यान से सटी है। इसके उत्तर दिशा में कनावर वन्य-प्राणी शरण्य स्थित है। यह राष्ट्रीय उद्यान विश्व के उन दो प्रमुख राष्ट्रीय उद्यानों में से एक है जो कि विलुप्त होने के कगार पर पहुंचे जुजुराणा (Western Tragopan) तथा अनेकों दुर्लभ एवं संकटग्रस्त पादप प्रजातियाँ, जिनमें से बहुत सी औषधीय महत्व की हैं, को संरक्षण प्रदान कर रहा है।

यह राष्ट्रीय उद्यान, रोजर एवं पनवार (1988) द्वारा वर्गीकृत 10 जीव भूवृत्तों मै से एक नार्थ वेस्टर्न हिमालयन जोन 02 (वायोटिक प्रोविंस ए) के अन्तर्गत आता है। इस उद्यान का आधे से अधिक भाग 4000-

ग्रेट हिमालयन राष्ट्रीय उद्यान के बासु नामक स्थान से लिये देवदार वनों का छाया चित्र

सालम पंजा – एक औषधीय पौधा

6000 मी० से अधिक उंचाई वाला है तथा इसका धरातल ऊंची चोटियों गहरी खाईयों, खड़ी चट्टानों, पहाड़ी दर्रो, तंग घाटियों एवं हिमनदों से सुसज्जित है। उद्यान में तीर्थन, सैंज, पार्वती व जीवानल नदियों का ऊपरी जल ग्रहण क्षेत्र शामिल हैं। ये नदिंया उद्यान की नैसर्गिक सुंदरता बढ़ाती पूर्व से पश्चिम की ओर बहते हुए ब्यास नदी में मिलती हैं।

यहां की मृदा में प्रमुख रूप से क्वार्टजाइट, सिस्ट, फाइलाइट, डोलोमाइट, लाइमस्टोन, शेल, स्लेट, नीश तथा ग्रेनाइट मिलता है। पार्वती वैली में मनीकरण के नीचे क्वार्टजाइट तथा सैंज वैली में लारजी से लेकर रक्ती तक लाइमस्टोन पाया जाता है। व्यास वैली में क्वार्टजाइट नही पाया जाता है जबकि सिस्ट तथा नीश बहुतायत में मिलता है जो कि विघटित होकर दोमट या चिकनी मृदा तैयार करती हैं। ये प्रक्रियाएं निचली घाटियों में पौधों के लिए उपजाऊ भूमि तैयार करती हैं।

यहाँ की जलवायु आदर्श 'शीतोष्ण तथा हिमाद्रि है। उद्यान का 68 प्रतिशत क्षेत्र जाड़े के दिनों में नवम्बर से मार्च तक 5-7 मी० बर्फ से ढका रहता है तथा तापमान शून्य के आस पास या नीचे चला जाता है, जिसके कारण जाड़ो में प्रचंड ठंड पड़ती है। गर्मी के दिनों में तापमान लगभग 15-20° से० के आसपास रहता है, तथा निम्न उचाँई वाले क्षेत्रों में कभी कभी बढ़कर यह 350 से० तक पहुंच जाता है। वर्ष में औसत वर्षा लगभग 150 से० मी० होती हैं। यहाँ पर वर्षा के दिनों में चट्टानों का खिसकना आम बात है।

उद्यान के बफर जोन में लगभग 141 गाँव हैं जिनमें रह रहे 1362 परिवारों की कुल जनसंख्या 9694 है। यहां की साक्षरता दर लगभग 13.6 प्रतिशत है। यहां के लोग जीविकोपार्जन के लिए प्रमुख रूप से कृषि तथा बागवानी के साथ-साथ भेड़ बकरियों का पालन करते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ के लोगों की आय के अन्य प्रमुख श्रोतों में मोरेल मशरूम (Morchella esculenta) जो कि एक बहुत ही कीमती मशरूम है तथा अनेकों जड़ी-बूटियां जैसे धूप (Jurinea macrocephala), कडु (Picrorhiza kurrooa), सालम, पंजा (Dactylorhiza hatagirea), सालम मिश्री (Satyrium nepalense), पतीश (Aconitum heterophyllum), रतनजोत (Arnebia euchroma) वन अजवाइन (Thymu linearis) इत्यादि का प्रकृति से संग्रह तथा विक्रय है। यहाँ के लोग खाद्य फसलों में गेहूँ (Triticum aestivum), जई (Avena sativa) तथा मक्की (Zea mays) आदि की खेती करते हैं। इस उद्यान के अन्दर व इसके आस पास स्थित धार्मिक महत्व के स्थानों में खीरगंगा में गर्म पानी के चश्में, रक्तीसर में रक्ती

जुजुराणा – मुर्ग की एक विलुप्त होती प्रजाति

नाला का उद्गम स्थल, हंसकुंड जहाँ से तीर्थन नदी निकलती है तथा मान्तालाई में पार्वती नदी का उद्गम स्थल शामिल है। प्राकृतिक दृष्टि से सोजा, जलोडी जोत, शांघड, शक्ती, मरोर, कुंदर से मझान, बसलेऊ जोत, सरेयुसर झील इत्यादि प्रमुख दर्शनीय स्थल हैं।

फुलानिया एरिक्वायडिस (लिवरवर्ट) का समूह

ग्रेट हिमालयन राष्ट्रीय उद्यान में पश्चिमी हिमालय के शीतोंष्ण वनों की सभी प्रमुख वनस्पतियां एवं वन्य जीव जातियां पायी जाती हैं। इस उद्यान का लगभग 17% प्रतिशत भाग घने जंगलों से ढका हैं जिसमें मुख्यतः तीर्थन, सैंज व जीवानल तथा इनके सहायक नालीं के आस पास के क्षेत्र शामिल है। ये वन घाटियों के तल से शुरू होकर लगभग 3600 मी० तक की ऊंचाई तक मिलते हैं। इसके ऊपरी भाग में जो कि लगभग 5000 मी० तक है, हिमाद्रि चारागाह (alpine medows) मिलते हैं। इस उद्यान में तोष (Abies pindrow), देवदार (Cedrus deodara) कैल (Pinus wallichiana), रई (Picea smithiana), रखाल (Taxus wallichiana) आदि के साथ-साथ बान ओक (Quercus leucotrichophora) मोरू ओक (Quercus floribunda), खरशु ओक (Quercus semicarpifolia) के जंगल बहुतायत में है। इन वनों में नगराल वंश के बाँस (Arundinaria) बहुतायत में मिलते हैं। बान ओक के कुछ जंगल तो अब इसी उद्यान में रह गये हैं। उद्यान के एल्पाइन चारागाहों में अनेक प्रकारकी जडी-बूटियां निकलती हैं जिनमें से प्रमुख हैं धूप, कड्डु, सालम, मिश्री, अतीश, वनफसा, वन ककडी, रखाल इत्यादि। करीब 3000 मी० की ऊँचाई पर अखरोट (Juglans regia) भोजपत्र (Betula utilis), तून (Toona serrata), खनोर (Aesculus indica) छलूना (populus ciliata) आदि चौडी पत्तियों वाली वनस्पतियां पायी जाती हैं। बिटल (Juniperus spp.), तलसी (Rhododendron anthopogon), बेसिल (Salix spp.) आदि वृक्ष-सीमा के पास तथा नीचे कम ऊँचाई वाले भागों में कथी (Indigofera), थनेना (Viburnum), मशोली (Berberis), हलू (Impatis), मलोरा (Rumex), आइरिस, पॉलीगोनम, सार्कोकोका, जिरार्डिनिया आदि की प्रजातियां पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ पर हरितोद्भिदों की अनेकों प्रजातियाँ, जिसमें वंश प्लेजियोकाइला, पोरिला, फ्रुलानिया तथा कुल रिबुलिएसी प्रमुख हैं, 1500-3000 मी० की उंचाई पर बहुतायत में मिलती हैं।

वर्तमान में उद्यान में पुष्पी पौधों की 128 कुल एवं 427 वंश में 832 जातियां एवं हरितोद्भिदों की 40 कुल एवं 58 वंश में 119 जातियां ज्ञात हैं। जिनमें से 104 जातिया लिवरवर्ट्स, तथा 15 जातियां मॉस की हैं। इस राष्ट्रीय उद्यान के भीतर स्तनधारी जन्तुओं की लगभग 31 प्रजातियां पायी जाती हैं जिनमें प्रमुख रूप से विलुप्त होने के कगार पर पहुँचे स्नों लेपर्ड (Uncia uncia), ब्लू सीप (Pseudois nayaur), ब्राउन बियर (Ursus arctos), हिमालयन आइबेक्स (Capra ibex), हिमालयन थार (Hemitragus jemlahicus), हिमालयन मस्क डियर (Moschus chrysogaster), बार्किंग डियर (Muntiacus muntjak), जैकाल (Canis aureus) भरल (Pseudois nayaur) हिमालयन ब्लेक बियर (Ursus thibetanus), हिमालयन एलो थ्रोटेड मार्टेन (Martes flavigula), लंगूर (Presbytis entellus), फ्लाइंग स्कैरल (Petaurista petauriata) आदि हैं। इस उद्यान में पक्षियों की लगभग 300 प्रजातियां पायी जाती हैं। पश्चिमी हिमालय में पायी जाने वाली सात मुर्ग जातियों में से 6 इस उद्यान में पायी जाती हैं ये प्रजातियां हैं जुजुराणा

(Tragopan melanocephalus), मोनाल (Lophophorus impejanus–हिमाचल का राज्य पक्षी), चीर (Catreus wallichii), हिमालयन स्नों काक (Tetraogallus himalayensis), कोकलास (Purcrasia macrolopha), क्लीज (Lophura leucomelana) इसके साथ-साथ उद्यान में अनेको प्रकार के कीट पतंग व तितलियां भी पायी जाती हैं।

वर्तमान में ग्रेट हिमालयन राष्ट्रीय उद्यान में पायी जाने वाली जड़ी-बूटियों के अत्याधिक दोहन तथा जानवरों के गैर कानूनी चरान के कारण इस क्षेत्र की पारिस्थितिकी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। फलस्वरूप इस उद्यान के पशु पक्षियों तथा कीट पतंगों के आवास प्रभावित हो रहे हैं तथा जड़ी-बूटियां भी कम हो रही हैं। मशरूमों को निकालने के कारण मोनल, जुजुराणा तथा अन्य पक्षियों के आवास प्रभावित हो रहे हैं क्योंकि इसके निकालने के मौसम में ही यहाँ पर पाये जाने वाले पक्षी अण्डे देते हैं और लोग मशरूम निकालते समय इनके अण्डों को भी नष्ट कर देते हैं। समस्याओं को ध्यान में रखते हुए सरकार तथा उद्यान के व्यवस्थापकों द्वारा पहल की जा रही है तथा अनेंकों परियोजनाएं चलाई जा रही हैं जिससे कि यहाँ की जैविक विविधता पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सके। अगर इस विशिष्ट जैविक विविधता को बचाना है तो सबसे ज्यादा जरूरत है यहां के लोगों को जागरूक करने की क्योंकि विना जागरूकता के प्रकृति की इस अमूल्य धरोहर का संरक्षण संभव नही है।

———————

पेड़ खड़ा है और हरा है जिसके द्वार
समझदार है, भाग्यवान है वह परिवार।।

* * *

जितने वृक्ष लगाओगे।
उतना जीवन पाओगे।।

* * *

धरती अम्बर, जल और जंगल।
इनकी रक्षा सबका मंगल ।।

पोंग डैम (महाराणा प्रताप सागर) नम भूमि-रामसार स्थल

सुनील कुमार श्रीवास्तव एवं देवेन्द्र कुमार सिंह
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा
भा. व. स., कोलकाता

नम भूमि क्षेत्र जहाँ विश्व के सर्वाधिक उत्पादक क्षेत्रों में से एक हैं, वहीं ये जैव विविधता के पोषक हैं। ये अपने अन्दर वनस्पतियों एवं जीव जन्तुओं को संजोये उनका संरक्षण करते है, खाद्य शृंखलाओ को स्थायित्व प्रदान करने के अतिरिक्त बाढ़ नियंत्रण, भू-जल शुद्धीकरण एवं निर्गमन, पोषक तत्व संघनन, व्यर्थ जल एवं प्राकृतिक शोधन, कृषि, उद्योग एवं पेय जल स्रोतों आदि जैसे परितन्त्रों द्वारा हमें लाभान्वित करते हैं। इसके अतिरिक्त नम भूमि हमारे पर्यटन के विकास का अभिन्न अंग हैं। ये हमें जलीय परिवहन भी प्रदान करते हैं। भारत में अनेकों नम भूमि क्षेत्रों में हर वर्ष पर्याप्त संख्या में प्रवासी पक्षी भी आते हैं जो पर्यटन के माध्यम से विदेशी मुद्रा अर्जित करने में सहायक हैं।

नम भूमि पर अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन, वर्ष 1971 में ईरान के रामसार में सम्पन्न हुआ था, जिसमें पक्षी प्राकृतवास को नम भूमि चिह्नित करने का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का मापदंड माना गया। इसी दिशा में भारत में वर्ष 1990 तक छः रामसार स्थल स्थापित किये गये। वर्तमान दशक के प्रारम्भ (2002) में भारत में तेरह अन्य नम भूमि क्षेत्र रामसार स्थल घोषित किये गये। इस प्रकार भारत में कुल उन्नीस रामसार स्थल हैं। समय-समय पर रामसार अधिवेशन के सम्मेलन होते रहे जिनमें रामसार स्थल के चयन में अन्य तथ्यों, जैसे इनका किसी जैव भोगोलिक क्षेत्रों में पाया जाना, इनमें अपार जैव सम्पदा का मिलना, प्रतिवर्ष लगभग 20 हजार पक्षियों का प्रवास, वनस्पतियों एवं जन्तुओं की लुप्त, लुप्तप्राय एवं संकटग्रस्त जातियों का मिलना आदि मुद्दों को भी शामिल किया गया। वर्ष 1993 में कुशीरों, जापान में हुई पॉचवी गोष्ठी में मत्स्य प्राकृतवास को भी रामसार नमभूमि स्थल घोषित करने का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का मुद्दा माना गया।

पोंग डैम (महाराणा प्रताप सागर) इन सभी आन्तर्राष्ट्रीय महत्व के मापदंडो के अनुरूप है जिसे पर्यावरण एवं वन मंत्रालय की नम भूमि समिति ने रामसार स्थल क्षेत्र में शामिल किया है।

हिमाचल प्रदेश राज्य के कांगडा जिले में व्यास नदी पर बना यह जलाशय हिमालय की तलहटी में बसी धौलाधर शृंखलाओं में स्थित है। इसकी भौगोलिक स्थिति 31°80 से 32°7'26 उत्तरी अक्षांश तथा 75°80 से 76°25 पूर्वी देक्षांश है। सन् 1975-76 में ब्यास नदी पर जलविद्युत परियोजना के बनने से पोंग जलाशय अस्तित्व में आया था। यह जलाशय भारत के मैदानी भाग के एक छोर पर होने के कारण यहाँ पर निरन्तर सैकड़ों प्रवासी पक्षी मध्य एशियाई क्षेत्रों से आते हैं। इस नम भूमि में अनगिनत जैव विविधता मिलने तथा उनके संरक्षण हेतु वर्ष 1983 में हिमाचल राज्य सरकार ने उसे जीव अभयारण्य भी घोषित कर दिया।

इस जलाशय की लम्वाई लगभग 42 कि मी है जो उत्तर पूर्वी दिशा से दक्षिण पश्चिम की ओर फैला हुआ है। कुल क्षेत्र लगभग 45 हजार हेक्टेयर (अधिकतम) है जो मौसम के अनुरूप बढ़ता घटता रहता है और औसतन 30 हजार हेक्टेयर आंका गया है। जलाशय के दोनों ओर लगभग 200 गाँव स्थित है जिनकी अनुमानित जनसंख्या 85 हजार के लगभग है। इसके जलग्रहण के क्षेत्रों की ऊँचाई समुद्रतल से 450 से 700 मी. आंकी गई है।

जलाशय मुख्य रूप से ब्यास नदी, जो देहरा गोपीपुर से होते हुए पोंग गाँव तक आई है, पर बना है। इसके अतिरिक्त इस जलाशय में जल की मात्रा को बढ़ाने में अन्य पाँच छोटी-बड़ी नदियों का योगदान रहा है, ये नदियां बनेर खड़ (हरीपुर गुलेर से), गज खड़ (नगरोटा सूरियां से), देवी खड़ (हरसर देवी से) देहर खड़ (ज्वाली से) तथा भूल खड़ जो फतेहपुर से निकली है, अलग-अलग स्थानों से आकर इस जलाशय में मिलती है।

पादप सर्वेक्षण

नमभूमि जलाशय एवं जलस्थीय कैचमेंट में देखा गया है कि जलाशय के बायीं ओर के क्षेत्रों में संरक्षित वन हैं जो ज्वाली, नगरोटा-सूरिया तथा देहरा गोपीपुर में पाये जाते हैं तथा दाईं ओर के क्षेत्रों में छितरे हुए वन देखने को मिलते हैं। इन क्षेत्रों में मरहोड, मटिहार, कठियाड़, स्थाना तथा शाहपुर बैराज आदि स्थान हैं। यहीं पर संसारपुर टिरेस का क्षेत्र है जहाँ पर जलाशय का जल, विद्युत ऊर्जा अर्जित करने के पश्चात बाँध से छोड़ा जाता है। इस स्थान पर जलीय वनस्पतियों की बहुतायत है।

वन एवं वनस्पतियाँ

पादप भौगोलिकीय दृष्टि से कांगड़ा घाटी पश्चिम हिमालय की धौलाधर श्रृंखलाओं में बसी हुई है जहाँ का क्षेत्र प्रायः समतल श्रृंखलाओं में बसा हुआ है एवं समतल भूमि के साथ-साथ निचली धारें एवं गहरी पतली घाटी पायी जाती है। कुल मिलाकर यहाँ की ऊँचाई में अधिक परिवर्तन नहीं है जिसके कारण यहाँ की वनस्पतियों में भी बहुत अधिक विविधता देखने को नहीं मिलती है। अभयारण्य की भौगोलिक स्थिति एवं मौसम के अनुरूप यहाँ उष्णकटिबंधीय वन पाये जाते हैं। यहाँ की वनस्पतियों को मुख्यतः तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है। जो जलाशय के स्तर से जलग्रहण क्षेत्र तक विद्यमान है।

1. मिश्रित पर्णपाती वन

इन वनों की वनस्पतियों में प्रायः चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष देखे जाते हैं जो आमतौर पर कैचमेंट क्षेत्रों के निचली ऊँचाई पर मिलते हैं इनमें मुख्य रूप से बोम्बेक्स सीबा, एनोजिसस लेटिफोलिया, लानिया कोरोमंडेलिका, एम्बिलका आफिसिनेलिस, होलेरिना एन्टीडिसेन्ट्रिका, कीडिया कैलिसिना एवं मैलोटस फिलिपिनेन्सिस। पहाड़ी ढ़लानों पर अकेशिया कटेचू तथा पाइनस रॉक्सबर्गियाई का रोपण देखा गया है जिनके बीच-बीच में फाइकस पामेटा, ग्रीविया ऑप्टिवा तथा एगिल मारमिलास के भी वृक्ष मिलते हैं। जलाशय के दोनों ओर स्थित गाँव में जो वृक्ष प्रजातियाँ मिलती है उनमें केशिया फिस्टुला, रिसिनस कम्युनिस, फाइकस बेंगालेन्सिस, मैंजिफेरा इन्डिका, साइट्रस प्रजाति तथा जेटरोफा कुरकास आदि प्रमुख हैं। सामान्य झाड़ी के रूप में एढटोडा जिलेनेका, मुराया कोएनिगी, एक्रोकार्पस फूट्रिसेन्स आदि मिलते हैं। लताओं में एब्रस प्रिकेटोरियस, बाहुनिया वाह्लियाई, सिसमपिलॉस पेरिरा, वाइटिस की जातियाँ आदि प्रमुख है।

2. कंटीले झाड़ वाले वन

पोंग नम भूमि के दोनों ओर बसे गाँव में रहने वाले लोग अपनी आवश्यकता अनुसार वनों पर आश्रित हैं जिस कारण कहीं-कहीं वन एवं वनस्पतियों का नुकसान हुआ है। इन स्थानों पर कंटीले झाड़ वाली प्रजातियाँ पायी जाती है। मौसम की दृष्टि से तथा यह क्षेत्र बहुत कम समय डुबान में आने से आमतौर पर शुष्क दिखते हैं। यहाँ पर आइपोमिया कारनिया, केसिया टोरा, वाइटेक्स निगण्डो, बोरहाविया डिप्यूजा, ट्राइडेक्स प्रोकम्बेन्स, ब्यूटिया मोनोस्पर्मा, सोलेनम नाइग्रम, रिसिनस कम्यूनिस पाये जाते हैं। रेतीले नालों के दोनों ओर अकेशिया कटेचू, जिजीफस नुमुलेरिया तथा सेकरम स्पॉन्टेनियम दिखाई देते हैं। जलाशय के दोनों

ओरके स्थान समय-समय पर डुबान में रहते हैं। यहाँ पायी जाने वाली सामान्य खरपतवारों में लेन्टाना कमारा, पार्थीनियम हिस्टिरौफोरस, केसिया ऑक्सीडेन्टेलिस, एजिरेटम कानिजाइडिस, आक्सेलिस कार्नीकुलेटा, एक्लिप्टा अल्वा, अमेरेन्थस स्पाइनोसम एवं वाइटेक्स निगण्डो भी मिलती हैं।

3. जलीय व जल स्थलीय वनस्पतियाँ

जलाशय के जल स्तर बढ़ने व घटने से यहाँ वनस्पतियों की प्रजातियाँ में काफी परिवर्तन देखा गया है। इनमें कुछ तो खुले रूप में तैरती हैं व अन्य अपनी जड़ द्वारा दलदल में लगी रहती हैं। खुली तैरती वनस्पतियों में हाड्रिला वर्टिसिलेटा, सिरेटोफिल्लम डिमर्सम, पोटोमोजिटॉन इन्डिकस, पोटामोजिटॉन क्रिसपस, नाजस माइनर आदि पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त वैलिसनेरिया स्पाइरेलिस, मार्सीलिया क्वाड्रिफोलिया आदि जल में जड़ द्वारा भूमि से लगी रहती है।

जल स्थलीय व दलदल वनस्पतियों में पालीगोनम ग्लैब्रम, टाइफा एंगुस्टेटा, सैजिटेरिया साइनेन्स, साइपरस कोरिम्बोसस, कोलोकेशिया एन्टीकोरम आदि शामिल हैं। शाहपुर बैराज के नीचे जलाशय के किनारों पर वेलिसनेरिया के टूटे पौधे लहरों द्वारा किनारों पर बहुत मात्रा में पाये गये। जल में तैरते हुए इनकी पत्तियों को बीच से प्रवासी पक्षियों के द्वारा खा लेने से ये पौधे बह कर किनारे इकट्ठा हो जाते हैं। निकटवर्ती शुष्क स्थानों पर सोलेनम इन्डिकम, सेन्टेला एशियाटिका, धतूरा सुआवियोलेन्स, बोरहाविया डिफ्यूजा, आल्टरनैन्थिरा सेसाइलिस, आइपोमिया एक्वेटिका, डाइकैन्थियम एनुलेटम, एवं थाइसैनोलिना मैक्सिमा आदि हैं।

शैवालीय वनस्पतियाँ

शैवाल जलीय परितंत्र के अभिन्न अंग है जो परितंत्र की खाद्य श्रृंखला को नियमित बनाये रखकर वहां की जैव विविधता का संरक्षण करते हैं। सर्वेक्षण के दौरान पोंग जलाशय के विभिन्न स्थानों से शैवाल के लगभग 22 नमूने एकत्र किये गये जिनकी पहचान करके बहुत ही महत्वपूर्ण आंकड़े मिले हैं। इन नमूनों में शैवाल की लगभग 41 जातियाँ मिली हैं जिनका प्रारूप एक कोशिका से लेकर फीतेनुमा तक पाया गया।

पोंग बाँध जलाशय के प्रमुख आकर्षण

पोंग जलाशय एवं निकटवर्ती क्षेत्रों में पाई जाने वाली वनस्पतियाँ एवं वन्य-प्राणी जातियाँ के कारण इसका एक विशिष्ट पारिस्थितिक महत्व है। यह उत्तरी भारत में मानव निर्मित सर्वाधिक बड़े जलाशयों में से एक है। विद्युत एवं सिंचाई परियोजनाओं के अतिरिक्त इस नम भूमि में प्रतिवर्ष लगभग 20,000 प्रवासी पक्षी शरद ऋतु में आते हैं जिनमें कई दुर्लभ जातियों के पक्षी भी हैं। इस जलाशय में लगभग 27 विभिन्न प्रकार की मछलियाँ भी पाई जाती हैं जिनमें महाशीर की तादाद सर्वाधिक है। आसपास के क्षेत्रों को बाढ़ से बचाने तथा मौसम को अनुकूल बनाने के साथ-साथ यह स्थानीय निवासियों को जीविका भी प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त यह जलाशय मनोरंजन क्रीड़ाओं जैसे तैराकी, नौकायन, मछली पकड़ना, पक्षी अवलोकन इत्यादि के लिए आदर्श स्थल है।

जलाशय को संकट

जलाशय के आस-पास के क्षेत्रों से निरन्तर मिट्टी कटने से इसका बहाव बदलता रहता है साथ ही उसमें मिटटी का जमाव बहुत होता जा रहा है, जिसके फलस्वरूप जलाशय का स्तर बढ़ रहा है। आस-पास रहरहे जन साधारण द्वारा अपने मवेशियों की चरवाई से वहाँ की मिट्टी का निरन्तर कटान होता रहता है तथा निकटवर्ती जंगलों से जलौनी लकड़ी कटने से वहां वनस्पतियों का भी ह्रास हो रहा हैं। इसके अतिरिक्त इन खाली स्थानों पर अनेकों खरपतवार उग आने से यहाँ मिलने वाली जन्तु एवं वनस्पति जातियों के संरक्षण

हेतु समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं। इस दिशा में कोई विशेष योजना को सही रूप से कार्यान्वयन न होने से जलाशय को भविष्य में संकट का सामना करना पड़ सकता है।

संरक्षण

जलाशय के संरक्षण के लिए सर्वप्रथम चारों ओर की मिट्टी के बहाव को झील में आने से रोकना है जिसके लिए समीपवर्ती क्षेत्रों में तथा अभयारण्य के वनों व वनस्पतियौं का बना रहना एवं खाली स्थानों में वनस्पतियों का निरन्तर रोपण होना अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही निकट के गाँव वालों में जलाशय के महत्व के बारे में जागरूकता पैदा करना, मवेशियों को जलाशय तट से दूर चरवाना तथा वनस्पतियों का अवैध दोहन होने से रोक कर ही इस राष्ट्रीय नमभूमि का संरक्षण किया जा सकेगा।

———————

हरी भरी हो धरती
ओजोन-परत पूर्ण आकाश।
निर्मल धारा जल की
प्राण भरा हर श्वास।।

स्वच्छ हवा, धरती हरी
निर्मल पानी होए।
रक्षा करे जो जीव की
सो ही मानव होए।।

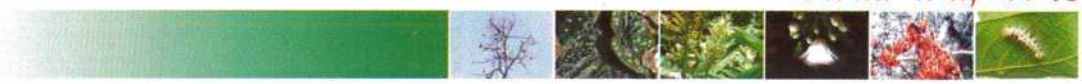

नेलीपू

आर. सी. श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर

हमारे देश के प्राचीन ग्रंथों में 'नेलीपू' अर्थात् लेन्टिबुलेरिएसी पादप कुल के 'यूट्रीकुलेरिया' वंश के कीटभक्षी पौधों का वर्णन पहले भी अंकित है और स्थानीय लोगों द्वारा इन्हें विभिन्न भाषाओं में विभिन्न स्थानीय नाम भी दिए गए है। परन्तु आज की अंतर्राष्ट्रीय मान्यताओं के अनुरूप इस वंश पर वैज्ञानिक अन्वेषण का कार्य एवं हमारे देश में इसकी सर्वप्रथम खोज 1689 में 'वान रीड' की पुस्तक 'हार्टस मालाबारिकस' में प्रकाशित 'नेलीपू' के साथ हुई।

'नम-भूमि' क्षेत्र की जैवीय-विविधता का एक महत्वपूर्ण सदस्य है यह कीटभक्षी पादप-वंश जिसे 'ब्लैडरवर्ट' की संज्ञा दी गई है। पादप-कुल-'लेन्टिबुलेरिएसी' के इस वंश का वनस्पातिक नाम 'यूट्रीकुलेरिया' है, जिसका नामकरण सर्वप्रथम जीवों एवं पौधों के नामकरण प्रणाली के जन्मदाता सर कार्ल फान लीनियस ने 1763 में किया था। 'लेन्टीबुलेरिएसी' पादप-कुल में 5 वंश एवं 280 प्रजातियाँ है, जबकि अकेले 'युट्रीकुलेरिया' वंश में ही 210 प्रजातियाँ हैं।

ये पौधे, कटिबंधीय, उष्णकटिबंधीय, शीतोष्ण एवं शीत प्रक्षेत्रों में भी पाए जाते है। क्ई प्रजातियाँ जल में तैरती हुई होती है, कुछ कीचड़ वाले स्थानों पर उगती है, तो क्ई प्रजातियाँ नए चट्टानों पर उगे मॉस के उपर पाई जाती हैं। कुछ तो वृक्षों के 'मास'-आच्छादित नम तनों या डालियों पर भी उगती हैं।

सर लीनिएस ने 1753 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'स्पेशीज प्लेन्टेरम' मे 'यूट्रीकुलेरिया' की 7 प्रजातियों का विवरण दिया था, जिनमें से एक भी भारतवर्ष में प्राप्त नहीं दर्शायी गई थी। परन्तु संभवतः गलती में उन्होनें 'वान रीड' की 'नेलीपू' को उसमें सम्मिलित कर लिया था। इस 'नेलीपू' का आज स्वीकृत वैज्ञानिक या वानस्पतिक नाम 'यूट्रीकुलेरिया रेटीकुलाटा' हैं।

मियामार्न ने 1768 में सर्वप्रथम 'यूट्रीकुलेरिया बाइफिडा' एवं 'यूट्रीकुलेरिया सेरूलिया' नामक प्रजातियों की भारत में प्राप्ति की रपट प्रस्तुत की। पुनश्च इन्होंने 'वान रीड' का चित्र भी सम्मिलित कर लिया।

'यूट्रीकुलेरिया स्टेलेरिस', जिसको 'कोएनिग' नामक वैज्ञानिक ने एकत्र किया था तथा 1781 में सर लीनिएस के पुत्र ने जिसका वर्णन प्रस्तुत किया था, भारत से एकत्रित पादप-नमूने के आधार पर वर्णित पहली प्रजाति है।

विलिएम डब्लू राक्सबर्ग ने 1798 में प्रकाशित उनकी पुस्तक (कोरोमन्डल कोस्ट के पौधे) में 'यूट्रीकुलेरिया स्टेलेरिस' का चित्रण भी किया था। तत्पश्चात् 1804 में वहल नामक वैज्ञानिक ने इन कुल पर प्रकाशित मोनोग्राफ में 34 प्रजातियों का वर्णन प्रस्तुत किया था जिनमें से 5 (यूट्रीकुलेरिया ग्रोमिनीफोलिया, युट्रीकुलेरिया प्लेक्सुओसा, यूट्रीकुलेरिया यूलीजिनोसा, युट्रीकुलेरिया हयूमिलिस तथा यूट्रीकुलेरिया रैमोसा) प्रजातियाँ भारतीय थी।

राक्सबर्ग कृत 'फ्लोरा इंडिका' जो 1820 तथा 1832 में प्रकाशित हुई, में मात्र तीन प्रजातियाँ (यूट्रीकुलेरिया स्टेलेरिस, यूट्रीकुलेरिया फेसीकुलाटा तथा यूट्रीकुलेरिया डाइफ्लोरा) ही सम्मिलित की गई थी।

'यूट्रीकुलेरिया हिर्टा', जो पहले मात्र पाण्डुलिपि नाम ही था तथा दक्षिण भारत में 'क्वाइन' द्वारा एकत्रित किया गया था, को नियमानुकूल स्थापित किया लिंक महोदय ने 1920 में। 'वालिच' की प्रख्यात

पुस्तक 'वालीचियन कैटलाग' के सभी नाम कालान्तर में या तो नियमित किए गए या फिर उन्हें 'सिनोनिम' श्रेणी में रखा गया।

'डीकैंडोल' का 'प्रोड्रोमस', जो 1844 में प्रकाशित हुआ, में उस समय तक वर्णित सभी यूट्रीकुलेरिया की प्रजातियो का विवरण प्रस्तुत किया गया था, जिनमें से अनेक भारतीय थी। 'ग्राहम' ने 1839 में मुंबई में पाये जाने वाले पौधों की एक सूची बनाई जिसमें यूट्रीकुलेरिया की दो नई प्रजातियाँ (यूट्रीकुलेरिया परप्यूरेसेन्स तथा यूट्रीकुलेरिया प्यूसिला) दर्शायी गई थी। तत्पश्चात 'बेंजामिन' ने 1845 तथा 1847 में भारत से 5 नई प्रजातियों (यूट्रीकुलेरिया अलाटा, यूट्रीकुलेरिया पाउसीफोलिआ, यूट्रीकुलेरिया स्कवैमोसा, तथा यूट्रीकुलेरिया वालीचिआना) की खोज की। 'एजवर्थ' ने 1848 में बंगाल से इस कुल के एक नए वंश एवं उसकी एक प्रजाति (डियरोस्पर्मम एल्बम) तथा यूट्रीकुलेरिया वंश की 4 नई प्रजातियों (यूट्रीकुलेरिया फोलिओलाटा, यूट्रीकुलेरिया पालीगेल्वायडिस, यूट्रीकुलेरिया टेरोस्पर्मा तथा यूट्रीकुलेरिया, रोजिआ) की खोज की। 'वाइट' ने 1849, 1850 में यूट्रीकुलेरिया की 24 प्रजातियो का चित्रण किया एवं उनके आपसी सबंधों पर आधारित पहचान कुंजी विकसित की। 1851 में दो और नई प्रजातियों (यूट्रीकुलेरिया आल्बोसिरूलिया एवं यूट्रीकुलेरिया डेसीपिएन्स) की खोज हुई 'डालजेल' नामक वैज्ञानिक द्वारा। ऑलिवर ने 1859 में 'भारतीय यूट्रीकुलेरिया' पर एक मोनोग्राफ प्रकाशित किया जिसमें 26 नई प्रजातियों का सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया था। इनमें उनके द्वारा खोजी गई चार नई प्रजातियों (यूट्रीकुलेरिया ब्रैकिआटा, यूट्रीकुलेरिया फरसेलेटा, यूट्रीकुलेरिया मल्टीकाउलिस एवं यूट्रीकुलेरिया स्कैन्डेन्स), दो नए भेद (यूट्रीकुलेरिया बालीचिआना भेद फिरमूला, तथा यूट्रीकुलेरिया रेटीकुलाटा भेद स्ट्रिक्टीकाउलिस)तथा एक प्रजाति का नूतन नामकरण (यूट्रीकुलेरिया कुमाउनेन्सिस) भी सम्मिलित थी। 1866 में 'डूरी' महोदय ने भारत की 17 प्रजातियों एवं पाँच भेदों का प्रशंसनीय वर्णन प्रस्तुत किया था।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक सी० बी० क्लार्क ने सर जोसेफ डाल्टन हुकर द्वारा सम्पादित भारतीय वनस्पतिजात पर प्रथम एवं अभूतपूर्व 7 खंडीय ग्रंथ (फ्लोरा ऑफ ब्रिटिश इण्डिया) में यूट्रीकुलेरिया की 22 प्रजातियों का विवरण प्रस्तुत किया परन्तु 10 प्रजातियों की अपूर्ण जानकारी के कारण अलग रखा। इसके पश्चात् जो आंचलिक वनस्पतिजात (फ्लोरा) के प्रकाशन का दौर चला उसमें प्रेन (1903) ने 9 प्रजातियाँ कुक (1905) ने बाम्बे प्रसिडेंसी से 10 प्रजातियाँ, डथी (1911) ने 'अपर गैजेटिक प्लेन' से 4 प्रजातियाँ, हैन्स ने बिहार एवं उड़ीसा से 9 प्रजातियाँ तथा गैबल (1924) ने मद्रास प्रेसिडेंसी से 16 प्रजातियों का विवरण प्रस्तुत किया जिसमें दो नई खोजी गई प्रजातियाँ (यूट्रीकुलेरिया रेजिओपरपूरिया, एवं यूट्रीकुलेरिया स्ट्रिक्टीकाउलिस) भी थी।

पुनर्गठित भारतीय वनस्पति सवेक्षण के प्रथम अध्यक्ष, फादर एच. सान्तापाउ ने 1950 मे मुम्बई में पाई जाने वाले 'लेन्टीबुलेरिएसी' कुल के पौधे का अति सुन्दर विवरण प्रस्तुत किया। इस वंश के वर्गीकरण एवं नामकरण क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विशेषज्ञ 'टेलर' महोदय ने 1964 तथा 1977 में अफ्रीका एवं मलेशिया के यूट्रीकुलेरिया की प्रजातियों पर जो कार्य प्रकाशित किया उसमें 10 प्रजातियाँ ऐसी थी जो भारत में पाई जाती थी।

उपर्युक्त प्रजातियों के अतिरिक्त समय-समय पर निम्न प्रजातियाँ भी खोजी गई :

यूट्रीकुलेरिया इक्वीसेटीकाउलिस	(ब्लाटर एवं मैक, कैन 1931)
यूट्रीकुलेरिया ओग्मोस्पर्मा	ब्लाटर एवं मैक, कैन 1931)
यूट्रीकुलेरिया रेटीकुलाटा भेद पार्वीफ्लोरा	(सन्तापाऊ 1949)
यूट्रीकुलेरिया सम्पती	(सुब्रामनियम एवं योगनरसिन्हम 1981)

यूट्रीकुलेरिया टेलरियाना	(जोसेफ एवं मानी 1983)
यूट्रीकुलेरिया खासियाना	(जोसेफ एवं मानी 1983)
यूट्रीकुलेरिया प्रिटेरिया	(मैथ्यू 1983)
यूट्रीकुलेरिया सेसिली	(मैथ्यू 1984)
यूट्रीकुलेरिया लाजलिना	(मैथ्यू 1984)
यूट्रीकुलेरिया रेक्टा	(मैथ्यू 1986)
यूट्रीकुलेरिया नायराई	(जनार्दनम एवं हेनरी 1986)
यूट्रीकुलेरिया मालाबारिका	(जनार्दनम एवं हेनरी 1989)
यूट्रीकुलेरिया सुब्रामानी	(जनार्दनम एवं हेनरी 1990)

अनेक वैज्ञानिकों ने इन पौधों के विभिन्न पक्षों पर शोध कार्य किया है। जनार्दनम एवं हेनरी ने 1992 में इस वंश की भारत में पाई जाने वाली प्रजातियों का सुन्दर विवरण प्रस्तुत किया है जिनमें रेखाचित्र एवं रंगीन फोटो भी है। इस अध्ययन के अनुसार हमारे देश में यूट्रीकुलेरिया वंश की 35 प्रजातियां पायी जाती हैं।

भारत में पायी जाने वाली प्रजातियाँ जलीय, स्थलीय या आंशिक रूप से उपरिरोही होती है। जलीय प्रजातियाँ मीठे पानी के पोखरों, झीलों, गड्ढों तथा धान के खेतों में, समुद्र तल से लेकर पहाड़ों तक पाई जाती है। प्राप्य स्थान के अनुसार इनमें कुछ विशेषताएँ भी देखी जाती है। समुद्र के किनारे पाए जाने वाले 'यूट्रीकुलेरिया आरिया' प्रजाति के पौधों के 'पर्णीय-अंग' तथा 'स्टेलन' कुछ मोटे होते हैं। यूट्रीकुलेरिया एक्जोलिटा' जब ठंडे स्थानों पर उगता है तो इसमें सरसिनेट वरनेसन देखा जाता है। 'यूट्रीकुलेरिया माइनर' में जड़ों में स्टोलन्स के अग्रभाग पर 'ट्यूरिन' विकसित हो जाते है पहाड़ी प्रजातियों (यूट्रीकुलेरिया ब्रैकिआटा, यूट्रीकुलेरिया फरसोलाटा, यूट्रीकुलेरिया कुमाउनेन्सिस, यूट्रीकुलेरिया मल्टीकाउलिस तथा यूट्रीकुलेरिया टाएटुला) के बीजों पर उभार (अपेन्डेज) पाए जाते हैं, जो इन नन्हे बीजों को अनुपयुक्त माध्यम पर वर्षा में बह जाने से रोकते हैं।

आंशिक ऊपरिरोही पौधे, मॉस- अच्छादित वृक्षों की तनो, चट्टानों आदि पर उगते है, जहाँ सीधी रोशनी कदाचित ही पहुंचती है।

स्थलीय पौधे अपने प्राप्ति स्थान के अनुरूप विशेषताए प्रदर्शित करते है। उदाहरणार्थ यूट्रीकुलेरिया एल्बोसेरूलिया, यूट्रीकुलेरिया सेसेली, यूट्रीकुलेरिया लेजुलिना, यूट्रीकुलेरिया मालाबारिका एवं प्रीटोरिसा, लेटेराइट चट्टानों पर भली-भाति विकसित होते हैं। इनका प्राप्य स्थान (सब्सट्रेटम) मानसून में नम एवं अन्य ऋतुओं में पूर्णतया सूखा होता है। वर्षा की पहली फुहार के साथ ये उग जाते है। प्राप्य स्थान की समुद्र तल से ऊँचाई भी इन पौधों की उपस्थिति पर प्रभाव डालती है। उदाहरणार्थ यूट्रीकुलेरिया नायराई, यूट्रीकुलेरिया रोजिऔपरपूरिया, यूट्रीकुलेरिया स्मिथिआना तथा यूट्रीकुलेरिया वाइटिआना, 1800 मीटर से ऊपर के स्थानों पर ही उगते है तथा प्राय ऐसे स्थानों पर पाए जाते है जहाँ चट्टानों से पानी टपकता रहता है या फिर घास के मैदानों में बहने वाले नालों के किनारे। 'यूट्रीकुलेरिया रेटीकुलाटा' प्रजाति प्रमुखतया धान के खेतों में ही मिलती है, इसका पुष्प-विन्यास घास के तने से तंतु की तरह लिपटा रहता है या फिर आपस में ही उलझे या रस्सी की तरह लिपटे रहते है।

'यूट्रीकुलेरिया ग्रेमिनीफोलिया' तथा 'यूट्रीकुलेरिया यूलीजिनोसा' नामक प्रजातियाँ, पहाड़ों पर, नम स्थानों पर, या नीचे जलाशयों के किनारे पर मिलते हैं। इनमे लगभग पूरे वर्ष फूल निकलते रहते है, परन्तु वर्षा ऋतु वस्तुतः इसके फुलने-फलने का समय होता है।

कुछ प्रजातियाँ काफी विस्तृत प्रक्षेत्र में पाई जाती है। उदाहरणार्थ 'यूट्रीकुलेरिया स्कैन्डेन्स' मैदानी भाग से लेकर 2500 मीटर की ऊँचाई तक मिलती है। 'यूट्रीकुलेरिया सिरूलिया' एवं यूट्रीकुलेरिया बाईफिडा' नामक दो प्रजातियाँ विभिन्न प्रवासों में समुद्र तल से लेकर ऊँचे पहाड़ों पर भी उगने की क्षमता रखती है। 'यूट्रीकुलेरिया आरेनेरिया', 'यूट्रीकुलेरिया हिरटा', 'यूट्रीकुलेरिया माइन्यूटीसिमा', 'यूट्रीकुलेरिया प्यूबेसेन्स' तथा 'यूट्रीकुलेरिया सुबुलाटा' नामक प्रजातियाँ बलुअट मिट्टी में उगती हैं।

भारत में प्राप्त 35 प्रजातियों मे से क्ई एक विश्व के अन्य भागों में भी पाई जाती है। उदाहरणार्थ–'यूट्रीकुलेरिया आस्ट्रेलिस' प्रजाति भारत, यूरोप, अफ्रीका तथा मलेशिया में भी पाई जाती हैं जबकि 'यूट्रीकुलेरिया माइनर' प्रजाति भारत, यूरोप एवं मलेशिया तक ही सीमित हैं। इसी प्रकार 'यूट्रीकुलेरिया ओरेनरिया' भारत के अलावा अफ्रीका में भी पाई जाती है, 'यूट्रीकुलेरिया वाइफिडा', 'यूट्रीकुलेरिया सिरूलिया' एवं 'यूट्रीकुलेरिया यूलोजिनोसा' भारत, मलेशिया एवं श्रीलंका में, 'यूट्रीकुलेरिया फेबिओलेटा' मलेशिया, भारत और अफ्रीका में 'यूट्रीकुलेरिया हिर्टा' भारत और मलेशिया में, 'यूट्रीकुलेरिया ग्रेमिनोफोलिया' एवं 'यूट्रीकुलेरिया पालीगेल्वायडिस' भारत एवं श्रीलंका में 'यूट्रीकुलेरिया माइन्यूटिसिमा' मलेशिया एवं श्रीलंका में 'यूट्रीकुलेरिया प्यूबेसेंस' भारत एवं अफ्रीका में 'यूट्रीकुलेरिया स्कैन्डेन्स' भारत, अफ्रीका एवं मलेशिया में, 'यूट्रीकुलेरिया स्टेलेरिस' अफ्रीका एवं श्रीलंका में, 'यूट्रीकुलेरिया स्ट्रारएटुला' अफ्रीका, मलेशिया एवं श्रीलंका में, 'यूट्रीकुलेरिया सुबुलेटा' अफ्रीका भारत एवं अमेरिका में 'यूट्रीकुलेरिया रेटीकुलाटा' एवं 'यूट्रीकुलेरिया रोजिओपपूरिया' भारत एवं श्रीलंका में उभयनिष्ठ है।

भारत, अफ्रीका एवं मलेशिया में पाई जाने वाली उभयनिष्ठ प्रजातियों (यूट्रीकुलेरिया यूलीजोनोसा को छोड़कर) में पर्णीय अंगों मे एक ही नस (वेन) होती है। परन्तु 'यूट्रीकुलेरिया यूलीजिनोसा' में 3 नसें होती है। दक्षिण भारतीय प्रजातियों में भी 3 नसें होती हैं।

नम भूमिवासी इस पादप वंश की 42.8% भारतीय प्रजातियाँ स्थानिक हैं। अर्थात् ये विश्व में कहीं और नही पाई जाती हैं। इनमे से 10 प्रजातियाँ 'वेस्टर्न घाट' क्षेत्र में तथा 5 प्रजातियाँ हिमालयी प्रक्षेत्र तथा पहाड़ियों तक ही सीमित हैं।

इन विशिष्ट पौधों के अनेक उपयोग भी है। 'यूट्रीकुलेरिया आरिया' एवं 'यूट्रीकुलेरिया रेटीकुलाटा' उद्यानोपयोगी है। इसे 'राकरी' के जलीय भाग में स्थापित किया जाता है। इसकी संकरी कटी-कटी जलमग्न पत्तियाँ, जिनमें कीड़े पकड़ने वाले 'ब्लैडर' (गुब्बारे जैसी विशिष्ट रचना) लगे होते है, अति आकर्षक छटा प्रदान करती है। 'यूट्रीकुलेरिया बाइफिडा' जिसे बंगाली भाषा में 'छोटा झांझी' तथा संथाली में 'अरक जवार' कहते हैं, मूत्र रोगों में लाभकारी है, जबकि 'यूट्रीकुलेरिया सिरूलिया' का प्रयोग धानों की सफाई में किया जाता है।

———————

धुँआ, शोर, दूषित जल होगा।
जन विहीन कल भूतल होगा।।

नोथापोडाइटिस निमोनियाना–एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधे का संरक्षण व विस्तार

ए. ए. अन्सारी, ए. के. साहू व जी. के. उपाध्याय*
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, गांगतोक-737103
*भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा-711103

नोथापोडाइटिस निमोनियाना

आइकेसिनेसी कुल के नोथापोडाइटिस वंश की विश्व स्तर पर पाँच जातियाँ पाई जाती हैं जिनमें से भारतवर्ष में केवल एक ही जाति पाई जाती है, जिसका विस्तार प्रायद्वीपी भारत में है तथा इसे अन्य स्थानों पर भी लगाया गया है जैसे–उत्तर बंगाल, दार्जिलिंग, असम, आदि। भारतवर्ष में पाई जाने वाली जाति नोथापोडाइटिस निमोनियाना (मापिया फोएटिडा) को प्रांतीय भाषाओं में ''कोडसा'' ''हेडारे'' (कन्नड) में ''कालगूर'' ''धनेरा'' (मराठी) एवं ''अराली'' ''चोरला'' (तमिल) के नाम से जाना जाता है।

यह झाड़ीदार पौधा है जिसकी लम्बाई 50 से 100 मीटर होती है। छाल पर छोटे-छोटे सफेद दाग स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। तने व शाखाएँ धारीदार एवं रोयेदार होती हैं। पत्तियाँ सरल जो अधिकतर अंडे के आकार पी होती हैं तथा 7.0 से 13.0 से.मी. लम्बी व 3.0 से 6.5 से.मी. चौड़ी होती हैं। नई पत्तियाँ हल्दी रोयेंदार होती हैं परन्तु आयु के साथ रोयें झड़ जाते हैं जिससे पत्तियाँ रोम हरित हो जाती हैं। फूलों से तीखी गंध आती है। फूल छोटे आकार के (2.0-3.0 मि. मी. लम्बे) शाखाओं के ऊपर गुच्छे में खिलते हैं। गुच्छों की लम्बाई 3.0 से 5.0 से. मी. तक होती है तथा पूरा पुष्प गुच्छ घना रोयेंदार होता है। पंखुड़ियाँ सफेद रंग की होती हैं। फल काला व लम्बाकार, लगभग 1.0 से. मी. लम्बा होता है। फलों में एक ही बीज होता है।

इस संकटग्रस्त पोधे का विस्तार मुख्य रूप से पश्चिमी प्रावद्वीप के भागों में 1,200 से 1,500 मीटर की ऊँचाई वाले पहाड़ी क्षेत्रों में खुली चट्टानों में है। केरल के अगस्तियामलाई क्षेत्र में अधिक मात्रा में मिलता है। फूल खिलने तथा फल लगने का समय दिसम्बर से मार्च महीनों के सध्य होता है। इसका फल देखने और स्वाद में जामुन के फल से मिलता-जुलता है। बीज से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है। इस पौधे में विशेष कर ''कम्पटोथेसीन'' नामक व अन्य रासायनिक पदार्थ अच्छी मात्रा में पाये जाते हैं जिसका प्रयोग कैन्सर जैसे घातक व अन्य बीमारियों के उपचार में किया जाता है। यह पौधा प्राकृतिक स्थानों से अत्यधिक दोहन के कारण संकटग्रस्त हो गया है। इसका संरक्षण व आपूर्ति खेती द्वारा का जा रही है। कलम द्वारा इसको सुगमता से लगाया व उगाया जा सकता है। येरकाड (तामिलनाड) पहाड़ी पर इसकी खेती एक बड़े क्षेत्र में की जा रही है जहाँ इसकी उपज बहुत अच्छी है। पौधा देखने में सुन्दर लगता है इसलिए उद्यान में भी लगाकर इस पौधे का संरक्षण भली भाँति किया जा सकता है।

———————

नील हरित शैवाल विविधता का जैव प्रौद्योगिकी में योगदान

एस० एल० गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

वर्तमान समय में 'साइनोबैक्टीरिया' नाम से प्रसिद्ध नील रहित शैवालों का पृथ्वी पर आगमन लगभग 2 से 3.5 खरब वर्ष पहले हुआ था और आज भी ये कुछ सूक्ष्म परिवर्तन को छोड़कर अपने पुराने रूप में ही विद्यमान हैं जो इनकी हर परिस्थितियों में अनुकूलन को दर्शाता है। यही कारण है कि ये पृथ्वी के प्रायः प्रत्येक भाग चाहे वह अतिशीतोष्ण (आर्कटिक एवं अंटाकर्टिक) हो या मरूथलीय हो अथवा गर्म स्रोतों का क्षेत्र हो, में पाये जाते हैं। भारत का उष्ण कटिबंधीय मैदान इनके लिए काफी उत्साहवर्धक है तभी तो विश्व में पाई जाने वाली कुल 2500 जातियों (150 वंशो) में से लगभग 1500 जातियां 100 वंशों के अन्तर्गत भारत में पाई जाती हैं।

शैवालों को सामान्य बोलचाल की भाषा में 'काई' कहा जाता है जो कि हमारे आसपास घरों की बाहरी दीवारों, नदी नालों के किनारे, प्रायः प्रत्येक प्रकार की मिट्टियों में हर मौसम में, परन्तु मुख्यतया बारिश के मौसम में पाये जाते हैं। इनमें विविधता न केवल इनके आकार, प्रकार, रंग बल्कि संरचना, पारिस्थितिकी विवरण आदि में भली भॉति दृष्टिगोचर होती है। विविधताओं के संदर्भ में ये एककोशीय से बहुकोशीय, एकक से तंतुनुमा (शाखित एवं अशाखित दोनो), रंगविहीन से बहुरंगी, स्वपोषित से विषमपोषित, अम्लीय से क्षारीय, ठंड से तापीय, स्वतंत्र से जुड़े हुए एवं ताजे जल से खारे जल सभी परिस्थितियों में विद्यमान हैं और यही विविधता इनके मानव जीवन के संदर्भ में उपयोगिता पर भी लागू होती है। फलस्वरूप कई शोधकार्य साइनोबैक्टीरियल जैवप्रोद्योगिकी में हुए हैं। आज विश्व भर में भोजन, चारा, ईधन, खाद्य, रंग उत्पादन, औषधियां, विटामिन, टॉक्सिन, उत्प्रेरक (Enzymes) प्रदूषण संकेतक एवं प्रदुषण प्रतिरोधी जैसे क्षेत्र में इन पर शोध किया जा रहा है। तंतुनुमा नील हरित शैवाल 'स्पाईरूलिना'का औद्योगिक रूप से दोहन एक ज्वलंत उदाहरण है।

जैव प्राद्योगिकी में योगदान

मानव के लिए जरूरी तीन मूलभूत आवश्यकताओं में भोजन प्रमुख है। इसके बाद औषधि, रसायन, आदि आते हैं और इन सभी में नीलहरित शैवालों ने अपना योगदान बढ़ाया है जो दिए गए निम्न तथ्यों से भली भॉति परिलक्षित होते हैं–

(1) भोजन एवं चारा के रूप में

नीलहरित शैवालीय प्रोटीन भोजन के अतिरिक्त स्रोत अथवा सहायक पोषक के रूप में विश्वभर में प्रसिद्ध हो रहे हैं। चिली मेक्सिको, फिलीपिंस एवं पेरू आदि देशों में एनाबीना एवं नास्टाक भोजन के रूप में प्रयोग किए जा रहे है। नास्टाक कम्यूनी में ऊच्च श्रेणी की रेशे एवं मध्यम प्रोटीन की मात्रा पाई जाती है जो मनुष्य की रेशे की आवश्यकता आसानी से पूरी कर सकता है। आज 'स्पाईरूलिना' की पोषक क्षमता एवं पाचन में सहायक होने का गुण औद्योगिक रूप ले चुका है क्योंकि यही एक ऐसा अकेला साइनोबैक्टीरिया सामने उभर कर आया है जिसमें उच्च प्रोटिन (60-70%) कार्बोहाइड्रेट (20%) लिपिड (5%) मिनरल्स (7%) के अलावा बीटा-कैराटिन, थायमिन, राईबोफ्लेविन के साथ-साथ विटामिन बी$_{12}$ भी है। हमारे देश में अब यह पावडर, टिकिया, कैप्सूल एवं ग्रेन्यूल्स हर प्रकार से उपलब्ध है। भोजन के अलावा चारा के रूप में फार्मिडियम वाल्डेरिएनम एक पूर्ण एक्वाकल्चर स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण होता जा रहा है जिसका एक मात्र कारण इसका पोषक तत्वों से भरपूर होने के साथ-साथ विषैला न होना भी है।

(2) औषधि

साइनोबैक्टीरिया खासतौर से लवणीय प्रजातियों में पाये जाने वाले टाक्सिन सहित अन्य बायोएक्टिव पदार्थ का औषधि क्षेत्र में काफी महत्व है। जो प्रजातियां इस क्षेत्र में शोध हेतु शामिल की गई हैं उनमें लिंग्ब्या, फार्मिडियम, आसिलेटोरिया, स्पाईरूलिना एवं आर्थ्रोस्पाइरा प्रमुख हैं। स्पाईरूलिना प्लेटेंसिस एवं आर्थ्रोस्पाइरा प्रजातियों में पाई जाने वाली गामा लिनोलेनिक एसिड दवा के रूप में महत्वपूर्ण है। यह मनुष्य के शरीर में आसानी से एरेचिडायोनिक अम्ल एवं फिर प्रोस्टेग्लेंडिन में परिवर्तित हो जाती है जो रक्तचाप कम करने में एवं मांसपेशियों के संकुचन में काफी प्रभावी है और इस तरह से लिपिड मेटाबोलिज्म में महत्वपूर्ण योगदान करती है। गुस्ताफसन (1989) ने HIV प्रतिरोधी यौगिक का आकलन लिंग्ब्या एवं फार्मिडियम की एक-एक लवणीय प्रजातियों से किया हैं। इसके अलावा जीवाणु प्रतिरोधी, कवक प्रतिरोधी, विषाणु प्रतिरोधी गुणों वाले तत्वों पर शोधकार्य आसिलेटारिया लिटीविरियान नामक प्रजाति पर हो रहा है।

(3) रसायन एवं उत्प्रेरक

बड़े पैमाने पर विटामिन-बी काम्प्लेक्स एवं विटामिन-ई के उत्पादन पर साइनोबैक्टीरिया का उपयोग हो रहा है। इसमें पाये जाने वाले कैरोटिनायड्स एवं फाइकोबिलीप्रोटीन्स का भी काफी बड़ा व्यापारिक मूल्य है क्योंकि इन पिग्मेंण्टो का उपयोग नेचुरल फूड कलरेंट के रूप में बढ़ता जा रहा है। फार्मिडियम वाल्डेरिएनम नीले फाइकोसायनिन का अच्छा स्रोत है जिसका डायग्नोस्टिक के क्षेत्र में फाइकोफ्लोर के रूप में काफी मांग है।

उत्प्रेरकों के उत्पादन में भी साइनोबैक्टीरिया जीवाणुओं से पीछे नहीं है। बीटा लैक्टामेज, प्रोटिएज एवं लाइपेज जैसे उत्प्रेरकों (Enzymes) का बड़े पैमाने पर उत्पादन साइनोबैक्टीरिया की क्ई प्रजातियों से किया जा रहा है। यहां तक कि एनाबीना की क्ई प्रजातियों जैसे एनाबीना सिलिंड्रिका, एनाबीना वैरिएबिलिस, एनाबीना फ्लास-एक्वी एवं एनाबीना वैरिएबिलिस आदि से सिक्वेंस स्पेसिफिक इण्डोन्यूक्लिएज इंजाइम्स का उत्पादन भी बड़े पैमाने पर हो रहा है क्योंकि इनका उत्पादन लागत जीवाणुओं से कम पड़ता है। क्ई अतिरिक्त कोशीय वृद्धि बढ़ावा देने वाले पदार्थो का उत्पादन नास्टाक मस्कोरम एवं हैप्लोसाइफान फांटिनेलिस जैसे शैवालों से हो रहा है जो क्ई अमीनो एसिड जैसे सीरिन, आरजीनिन, सिस्टीन, ग्लूटामिक एसिड, लाइसिन एवं हिस्टीडिन के अच्छे स्रोत हैं।

(4) जैव उर्वरक

विश्व एवं भारत में धान की पैदावार बढ़ाने में तंतुनुमा हेटरोसिस्टम नील हरित शैवालों का योगदान काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि वातावरणीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण में ये साइनोबैक्टीरिया काफी अहम भूमिका निभाते हैं। एक शौध परिणाम के अनुसार साइनोबैक्टीरिया की उपस्थितिसे धान की पैदावार प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष 18-35 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। एनाबीना एजोली नामक प्रजाति अकेले ही लगभग 120-312 किग्रा, नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर स्थिर करती है। यह न केवल भूमि की उपजाऊपन को बढ़ाती है बल्कि मिट्टी में रहने वाले असंख्य सूक्ष्म जीवाणओं की वृद्धि में भी सहायक होती है। एनाबीना के अलावा नास्टाक कैल्सीकोला, नास्टाक कम्यूनी, टालिपोथ्रिक्स एवं सिलिण्ड्रोस्पर्मम की अनेकों प्रजातियां नाइट्रोजन स्थिरीकरण में योगदान करती है।

(5) प्रदूषण संकेतक एवं प्रदूषण अवरोधक

बढ़ते औद्योगीकरण के कारण एवं अपशिष्टों का नदियों झीलों में गिरना जल प्रदूषण का एक महत्वपूर्ण कारण हैं जिनके कारण पानी में नाइट्रोजन एवं फास्फोरस जैसे पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है और यही

शैवालों के अनियंत्रित वृद्धि का कारण बनते है। इसके अलावा पानी में भारी मात्रा में भारी धातु (Heavy metals) भी मौजूद रहते है जिनको अवशोषित करने में नील हरित शैवालों का योगदान बढ़ता जा रहा है क्योंकि ये उस प्रदूषित सिस्टम में आक्सीकरण एवं मिनरलाइजेशन को बढ़ावा देते हैं। आसिलेटोरिया बोरियाना नामक लवणीय प्रजाति डिस्टलरी उद्योगसे स्रवित अपशिष्ट जल में पाये जाने वाले मिलन्वायडीन को तोड़ने में प्रभावी पाई गई है। इसके अलावा अन्य साइनो बैक्टीरिया की पेष्टिसाइड, डिटरजेन्ट जैसे उद्योगों में संकेतक एवं उन्मूलन के रूप में उपयोगी पाए गए है। स्पष्ट है जैवप्रोद्योगिकी में साइनोबैक्टीरिया का उपयोग असीमित है और बड़े पैमाने पर शोध की आवश्यकता है। हमारे देश में इसके दोहन एवं उचित उपयोग की अपार संभावना है जिससे एक सामान्य 'काई' की मनोदशा से उपर उठकर इस प्राकृतिक वनस्पति सम्पदा का भरपूर उपयोग मानव कल्याण हेतु हो सके।

———————

अधिक वृक्ष और कम सन्तान।
तभी बनेगा देश महान।।

पर्यावरण सुरक्षा का व्रत
हमको लेना होगा।
स्वस्थ सुरक्षित हरा भरा जग
कल को देना होगा।।

बैरिंगटोनिया एशियाटिका–समुद्रतट की रानी

विनोद मैना एवं जी. वी. एस. मूर्ति
भा. व. स. दक्षिणी परिमंडल
कोयम्बटूर

पुष्प : बैरिंगटोनिया एशियाटिका (समुद्रतट की सुन्दरी)

''समुद्र तट की रानी'' जिसका वनस्पतिक नाम है ''बैरिंगटोनिया एशियाटिका'', ''बैरिंगटोनिएसी'' कुल का सदस्य है। इस कुल में बैरिंगटोनिया वंश की लगभग 45 जातियाँ पृथ्वी के पूरा उष्ण कटिबंधीय देशों जैसे उष्णकटिबंधीय अफ्रीका, इंडो-चाइना, पोलिनेशिया एवं उत्तरी आस्ट्रेलिया में फैली हुई है। भारत में इस वंश की लगभग 9 जातियाँ हैं। बैरिंगटोनिया एशियाटिका श्रीलंका, ताईवान, मयांमार, वियतनाम, थाईलैंड इण्डोनेशिया, सिंगापुर, मलाया प्राय द्वीप, उत्तरी अस्ट्रेलिया तथा भारत में पाया जाता हैं। यह सामान्यतः समुद्र के रेतीले तटों व मैग्रोव (वायुशिफ) वनों के समीप पाया जाता है।

भारत में ये अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह के रेतीले समुद्री तटों पर प्राकृतिक रूप में फलते-फूलते पाये जाते हैं। श्रीलंका व अन्य देशों में इसे तटीय रास्ता व उद्यानों मे रोपित किया गया है।

''बेरिंगटोनियाँ एशियाटिका'' मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं जो आमतौर पर उन समुद्री तटों पर पाये जाते हैं जहाँ मीठे पानी के स्रोत समुद्र के खारे पानी से मिलते हैं। यह वृक्ष, चमकीले गहरे हरे रंग की पत्तियों से युक्त व आकर्षक पुष्पों से लदे होने के कारण अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है। अतः इस को ''समुद्र तट की रानी'' कहना अतिशयोक्ति ना होगा।

इसे भारत में डोडा (अंडमानी) माइयाँ (जाखा) हू-आह (निकोबारीं), ओडालम्, समुतिरा (तमिल), मुडिल्ला (सिंहली), क्यैगी (मयांमारी), बीटूग, बोनेट्स (फिलीपीन्स) एवं बोनेट्स, कार्रे, बैग्बी (इंडो-चाईनीज) के नाम से जाना जाता है।

यह सदाबहार वृक्ष औसतन 30 से 40 फीट ऊँचा होता है। इसका तना मोटा, शाखित व हल्के भूरे रंग की छाल वाला होता है। इसकी पत्तियाँ चौड़ी, बड़ी, आयताकार चमकीले रंग की होती हैं जो सरसरी दृष्टिसे देखने पर बदाम (टरमिनेलिया कटप्पा) की पत्तियों से मेल खाती है। किन्तु पर्णवृन्त में भिन्नता है।

पुष्प बड़े हल्के गुलाबी सफेद रंग व पुंकेशरों की अधिक संख्या होने के कारण बहुत ही आकर्षक व देखने में चेहरे पर लगाने वाले पाउडर के पफ के समान दिखते हैं। प्रातःकाल व सूर्यास्त से पहले पुष्प कली दो असमान भागों में स्फुटित होती है। और इसी के साथ चार पँखुड़ियो तथा छः पँक्तियों में संयोजित लगभग

10 से.मी. लम्बे पुंकेसरों के समूह का बाहर आना एक अति सुन्दर पुष्प की आकृति को जन्म देता है। पुष्पों के खिलने की प्रक्रिया का मनोहारी दृश्य एक लेखक को ग्रेट-निकोबार के समुद्री तट नेवीडेरा फोरेस्ट कैम्प के नजदीक देखने को मिला। जिसे उसने बड़ी ही सावधानी से अपने कैमरे में कैद कर लिया।

यह दृश्य इतना मनभावन था कि यह घंटों देखता रहा और पता ही न चला कि सूर्यास्त कब हो गया। जब पुष्प खिलते हैं तो अपनी सुन्दर छटा के साथ ही एक हल्की सी मीठी सुगंध भी वातावरण में बिखेर देते हैं, ताकि कीट-पतंगों को परागण हेतु आकर्षित कर सकें। पतंगों के इस पुष्प के प्रति आकर्षण को एक नन्ही सी शिकारी मकड़ी भी भलीभाँति समझती है। मकड़ी पुष्प के खिलते-खिलते ही अपना जाल बुनकर चुपचाप शिकार की प्रतीक्षा करती है। इस घातक हमले से बेखबर कीट-पतंगे इस पुष्प की सुन्दरता व महक से आसक्त हो जैसे पुष्प पर बैठते हैं, मकड़ी के जाल में फँस कर काल के ग्रास बन जाते हैं। सूर्योदय के समय यदि आप इस वृक्ष के नीचे देखेंगे तो पायेंगे कि पुंकेशरों के गुच्छे तट की रेत पर बिखरे पड़े हैं क्योंकि परागण के तुरंत बाद ये झड़ कर गिर जाते हैं। जारवा जन जाति के बच्चे व स्त्रियाँ कौतूहल वश इन्हें एकत्रित करके स्वयं को अलंकृत करते हैं।

फल : बैरिंगटोनिया एशियाटिका (समुद्रतट की सुन्दरी)

इस वृक्ष के फल भी पुष्पों की भांति आकर्षक होते हैं। फल बड़े, चौकोणीय आकार व 10 से.मी. माप के होते हैं। इनकी बाहरी त्वचा चिकनी व अंदर से रेशेदार होती है। फल का अग्रिम सिरा नुकीला होता है। ये गुच्छों में होते हैं तथा समुद्रतट पर घूमते हुए व्यक्तियों का ध्यान अनायास ही अपनी और खींच लेते हैं। इनका वितरण जल द्वारा होता है। समुद्र तट पर विखरे अंकुरित फल अनुकूल परिस्थितियों में विकसित हो नये वृक्षों को जन्म देते हैं।

उपयोगिता : अंडमान-निकोबार द्वीपों के जन जातीय लोग फलों व वृक्षों के छाल को मत्स्य विष के रूप में मछली पकड़ने हेतु प्रयोग करते हैं। इसके अलावा इसकी जड़े औषधीय गुणों में ''सिनकोना'' के समान हैं। इसलिये फलों को खाँसी, अस्थमा, अतिसार, व ज्वर में औषधि के रूप में उपयोग करते हैं। फलों को कूट-पीस कर स्नफ बनाकर कुछ अन्य चीजों के साथ मिलाकर चर्मरोगों में उपयोग करतें हैं। इतना ही नहीं इंडो-चाइना क्षेत्र में लोग इसके फलों को खाते भी हैं। किन्तु यह तभी संभव होता है जब इसमें पाये जाने वाले सैपोनिन को नष्ट किया जा सके और ढंग से पकाया जाये। इसकी काष्ठ हल्की, पीली व तैरनें में आसान होने के कारण जनजातीय बच्चे राफ्ट बनाने तथा निकोबारी अपनी नाव (कैनू) बनाने में उपयोग करते है। जारवा जाति के लोग इसे सुअर के भोजन के रूप में प्रयोग करते हैं। इसके बीजों को खाने से सुअर में चर्बी की मात्रा बढ़ती है।

इस वृक्ष की अन्य उपयोगिताओं व औषधीय गुणों पर शोध की संभावनाएं हैं। इस सुन्दर वृक्ष को तटीय राज मार्गो व उद्यानों मे रोपित किया जा सकता है। ताकि वर्तमान व भविष्य में तटीय क्षेत्र में बढ़ती मानवीय गतिविधियाँ जैसे पर्यटन, बालुखनन, तटीय मार्गो का निर्माण, बंदरगाहों का निर्माण तथा सुनामी व चक्रवात जैसी प्राकृतिक आपदाओं से इस पादप जाति को बचाया जा सके।

गान्तोक का सुन्दर आर्किड डेन्ड्रोबियम क्राईसेन्थम

ए. ए. अन्सारी एवं ए. के. साहू
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, गान्तोक

डेन्ड्रोबियम क्राईसैन्थम का वर्णन सर्वप्रथम जान लिन्डले ने 1830 में नैथेनियल वैलिच के द्वारा एकत्रित पादप नमूने के आधार पर किया था। इस सुन्दर पौधे का विस्तार पूर्व व मध्य हिमालयी क्षेत्रों में है। सैलानियों व वनस्पतिज्ञों को गान्तोक शहर में इस सुन्दर व बहुतायत में पाये जाने वाले आर्किड का अवलोकन करीब करीब हर जगह हो जाता है।

सिक्किम का क्षेत्रफल 7096 वर्ग कि.मी. है, जो देश के कुल भूभाग का मात्र 0.2% है, परन्तु सधनता व संकुचित विस्तार वाले पौधों के बहुतायत में पाये जाने के कारण यह विश्व के प्रमुख जैविक सम्पदा वाले क्षेत्रों में शामिल है। सिक्किम प्रदेश का क्षेत्रफल कम होने के बावजूद देश के कुल पुष्पीय पौधों 17,500 के लगभग एक तिहाई 5000 जातियों का निवास स्थान है। आर्किड इस के 10% से भी अधिक मात्रा में मिलते है, जिसका आकलन लगभग 525 है। डेन्ड्रोबियम क्राईसैन्थम वंश की अनेक जातियाँ इस क्षेत्र में पाई जाती है। जिन में मुख्य रूपसे और बहुतायत मे दिखने वाली जाति डेन्ड्रोबियम क्राईसैन्थम मुख्य रूप से 'उतिस' (अलनस नेपालेंसिस) पर उगता है यानी पौधा परजीवी (इपिफाइट) है। इस के अतिरिक्त मकानों की छतों पर, चट्टानों की दरारों, मुंडेरों आदि पर जहां मिट्टी व अन्य खाद्य पदार्थ तथा आश्रय मिल जाता है, इनके बीज उग जाते है। पेंड़ो पर जेसनेरियेसी कुल की जाति एस्चीनेन्थस हुकेराई के साथ साथ यह उगता है, जिस के फूलो का रंग लाल होता है, जो डेन्ड्रोबियम काईसैन्थम के पीले व केसरिया फूलों के साथ मिलकर एक विहंगम छटा व अद्‌भुत दृश्य उत्पन्न करता है तथा देखने वालों का मन मोह लेता है। डेन्ड्रोबियम क्राईसैन्थम की विशेषता इस की उगने की क्षमता है, जो अत्यधिक प्रदूषित जगहों पर भी सामान्य व भलीभांति उगता है और नियमित रूप से पुष्पित होता है। सिक्किम की राजधानी लगभग 20 कि.मी. वर्ग में फैले तथा 50,000 आबादी वाले शहर गांतोक में, जहां मोटर वाहनों के धुएं से काले पड़े व अन्य प्रदूषित एवं आर्किड की जातियों के लिए प्रतिकूल जगहों पर भी यह सामान्य रूप से उगता है तथा पुष्पित होता है। इस की गुणवत्ता प्रदूषण को सहने तथा सक्षम व समर्थ होने का लक्षण है। अर्थात इनके जैव द्रव्य का प्रयोग अन्य जातियों के लिए भी किया जा सकता है। शहरीकरण व पेंड़ों की कटाई के कारण आर्किड व अन्य पौधों की जातियाँ संकटापन्न हो रही हैं। गांतोक में बहुत तेजी से शहरीकरण हो रहा है व अत्याधिक भवनों का निर्माण हो रहा है तथा आस-पास के वन क्षेत्र कम हो रहे है और पेड तेजी से काटे जा रहे हैं तथा प्रदूषण लगातार बढ़ता जा रहा है। इस संबंध में यह विशेष बात बताना आवश्यक समझते हैं कि 'उतिस' पेंड़ जिस की जड़ ज्यादा गहराई तक नहीं जाती तथा वृद्ध पेंड़ अक्सर झुक जाता है जिसके कारण आकस्मिक गिरने का निरन्तर भय लगा रहता है। इस वजह से भी उतिस पेड़ों की कटाई हो रही है तथा शहर को इससे मुक्त करने का विचार चल रहा है। वैसे इस तरह के पेड़ भारी वर्षा व तूफान में स्वयं ही गिर जाते हैं। ऐसे में डेन्ड्रोबियम क्राईसैन्थम की अनुकूलन की क्षमता का महत्व वैज्ञानिक दृष्टि से बढ़ जाता है। इस आर्किड को गान्तोक के अलावा नज़दीक के अन्य क्षेत्रों मे कम देखा गया है।

गंगटोक में इस आर्किड पर अधिकतर फूल जून से सितम्बर तक आते हैं। डेन्ड्रोबियम क्राईसैन्थम वैलिच एक्स लिंडले का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है।

परजीवी पौधा 50 से 100 से.मी. लम्बा होता है। इस का तना पत्तियों से ढका हुआ लटकी अवस्था में होता है। पत्तियॉ 10 से 20 से.मी. लम्बी अंडाकार–भाले के रूप की होती है। पीले रंग के अतिसुन्दर फूल के पुष्प 2 से 4 के गुच्छे में तने की गांठो से लटकी हुई अवस्था में निकलते हैं। मध्य पंखुड़ी पर भूरे रंग का गोल धब्बा वाले 4 से.मी. लम्बे सुगंधित फूल होते है। फल हरे रंग के अंडाकार व धारीदार होते है।

तवांग जिले की वनस्पति-विविधता

एच. एस. महापात्र एवं आर. सी. श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर

तवांग जिले की वनस्पति-विविधता

विराट हिमालय के पूर्वी भाग में बसे अरूणाचल प्रदेश का तवांग जिला न केवल भारतवर्ष में अपितु सम्पूर्ण विश्व में वनस्पति विविधता के दृष्टिकोण से अनूठा एवं रोचक कहा जा सकता है। 27°25' से 27°44' उत्तरी अक्षांश तथा 91°42' से 92°39' पूर्वी देशांतर पर स्थित तथा चीन एवं भूटान की अंतरराष्ट्रीय सीमारेखा से घिरा यह जिला अनेक हिमाच्छादित एवं गगनचुम्बी पर्वतमालाओं एवं घाटियों से सुसज्जित है तथा अपने इसी विशिष्ट सौंदर्य के कारण यह 'पृथ्वीलोक का गुप्त स्वर्ग' भी कहा जाता हैं। न केवल प्राकृतिक सौंदर्य वरन् धर्म, संस्कृति, यहाँ की नृ-जातियाँ एवं गौरवपूर्ण इतिहास भी इस जिले को एक विशिष्टता प्रदान करते हैं। एशिया की द्वितीय सबसे विशाल मठ 'तवांग मॉनेस्ट्री' जो लगभग 400 वर्ष पुराना है, यहाँ के गौरवपूर्ण इतिहास की साक्षी है। यहाँ स्थित 26 फुट ऊँची भगवान बुद्ध की प्रतिमा सहज ही पर्यटकों का ध्यान आकृष्ट करने में सक्षम है। इस जिले का नाम 'ता' एवं 'वांग' दो शब्दों के योग से बना है जिसका अर्थ है–'घोड़ों के द्वारा चयनित स्थान'। यहाँ निवास करनेवाली 'मोम्पा' जनजाति की एक किंवदंती के अनुसार तवांग जिले में इस धर्मगुफा के स्थान का चयन गुफा के संस्थापक लामा लोदरे ग्याव्से के घोड़े के दैनिक दिशानिर्देशों के आधार पर हुआ, अतः इसका नाम तवांग पड़ा।

पाँच मुख्य परिमण्डलों यथा : तवांग, मुक्तो, थिग्बू, लुमला तथा जिमिथांग में विभाजित यह जिला 2,172 वर्ग कि. मी. क्षेत्र में फैला हुआ है। ये सभी क्षेत्र विभिन्न नदियों जैसे –तवांग चू, न्यामजाँग आदि के द्वारा सिंचित होते हैं। ये सभी नदियाँ मिलकर अंततः भूटान की ओर प्रवाहित होती हैं। यहाँ की जलवायु उच्च आर्द्रता से युक्त है तथा तापमान में लगभग 2° से 24° सेंटीग्रेड तक परिवर्तन देखा जा सकता है। दिसम्बर से लेकर फरवरी मास यहाँ के सबसे ठंडे मास होते हैं तथा जुलाई एवं अगस्त के महीनों में वातावरण काफी हद तक शुष्क एवं गर्म हो जाता है। यहाँ की मिट्टी जो गहरे भूरे रंग से पीले-भूरे रंग की है, उच्च अम्लता से युक्त है। इस मिट्टी में हयूमस तथा उच्च मात्रा में नाइट्रोजन भी पाया जाता है।

तवांग जिला मुख्यतः बौद्ध धर्म का अनुसरण करने वाली मोम्पा जनजातियों के लिए जाना जाता है। सरल स्वभाव से युक्त अपनी अनमोल संस्कृति के संरक्षक ये मोम्पा पत्थर तथा लकड़ियों से बने घरों में मुख्यतः निवास करते हैं। इनके निवास स्थलों पर छोटे-छोटे 'गोम्पा' थानि पूजा के स्थान तथा धार्मिक झण्डे लहराते हुए सहज ही देखे जा सकतेहै। इनका मुख्य पेशा कृषि है जहाँ ये गेहूँ, जौ, बाजरा, तथा अन्य फसलों की खेती करते हैं। इनके पालतू पशुओं में याक, मिथुन, भेड़ तथा घोड़े प्रमुख हैं जिनसे ये दूध, ऊन, माँस

तथा अन्य जरूरत की चीज प्राप्त करते हैं। इनमें से कुछ लोग एक विशिष्ट हस्त निर्मित कागज का (जिसे यहाँ शुग-शांग के नाम से जाना जाता है) धार्मिक अनुष्ठानों में श्लोकों को लिखने हेतु थाइमेलिएसी परिवार के एक पौधे 'डैफ्ने पैपाइरैसिया' से निर्मित किया जाता हैं । इसके अलावा ये जनजातियाँ 'चावल' तथा 'मरूआ' के द्वारा एक विशिष्ट स्फूर्तिदायक पेय का भी निर्माण करते हैं।

लगभग 2,500 मीटर पर स्थित समशीतोष्ण चौड़े पत्ते वाले वनों से लेकर लगभग 5,000 मीटर की ऊँचाई पर स्थित हिमाद्रि वनों की विविधता इस क्षेत्र को सहज ही विशेष बनाती हैं। इस क्षेत्र की वनस्पतियों को हम मुख्यतः निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं :–

1 समशीतोष्ण वन :

इस प्रकार के वनों को भी हम दो मुख्य भागो में वर्गीकृत कर सकते हैं :–

(i) **समशीतोष्ण चौड़े पत्ते वाले वन :** ये वन यहाँ मुख्यतः अधिक ठंड एवं वर्षा वाले क्षेत्रों जैसे–जंग, मुक्तो, बोमडीर आदि में देखे जा सकते है। लगभग 2,500 से 3,500 मीटर की ऊँचाई वाले इन वनों में फैगेसी एवं एरीकेसी कुल के पौधों की बहुतायत है। वहाँ पाए जानेवाले मुख्य पौधों में एसर हूकेरी, एसर ऑबलाँगम, एसर पेक्टीनेटम, बेटुला अल्नॉइडस एक्स बकलैंडिया पॉपुल्निया, क्वेरकस लैमेलोसा, रोडोडेन्ड्रान , कैस्टानॉसिस, थूओनिमस, पॉपुलस आदि की जातियाँ, मिरसीन सेमीसेरटा, बार्बेरिस वैलीचिआई, कैरिऑप्टेरिस ओडोराटा, वैक्सीनियम स्प्रेंगलाई, एनीमोन इलांगाटा, बिगोनिया नेपालेन्सिस, प्रैगेरिया न्यूबीकोला, रोरिप्पा इंडिका तथा अगापिटिस की कई प्रकार की जातियाँ देखी जा सकती हैं।

(ii) **समशीतोष्ण चीड़ एवं पृथुपर्णी वन :**

लगभग 3,000 से 4,200 मी. की ऊँचाई वाले क्षेत्र जैसे तवांग, बॉमडीर, मागो तथा सेला के निचले भागों में इस प्रकार के वन देखे जा सकते हैं। इन वनों में एबीजडेन्सा, सुगा डयूमोसा, पाइनस वा वालीचियाना तथा क्यूप्रेसस टोरूलोसा के वृक्ष प्रचुरता में पाए जाते हैं। इस वन की विभिन्न झाड़ियों में रोडोडेन्ड्रॉन, बार्बेरिस, सैलिक्स, कोटोनिएस्टर, लोनीसेरा आदि की जातियाँ प्रमुख हैं जबकि विभिन्न प्रकार के शाकों में एनीमोन, प्रिमुला, पोटेंटिला, पेडिकुलैरिस, मेकानॉप्सिस, प्रिटिलेरिया आदि की कई जातियाँ देखी जा सकती हैं। इन सबके अतिरिक्त इन क्षेत्रों में साइ्जोर्स्टेकियम तथा अरून्डिर्नेरिया वंश के बाँस भी देखे जा सकते हैं।

II. उप-हिमाद्रि तथा हिमाद्रि वन :

लगभग 4,500 से 5,500 मीटर की ऊँचाई पर पाए जाने वाले ये वन ठंड के दिनों में अधिकांशतः हिमाच्छादित ही रहते हैं। नागुला, बुमला तथा सेला क्षेत्र में पाए जाने वाले वन इसके उदाहरण हैं जहाँ मुख्य वनस्पति रोडोडेन्ड्रॉन जैसी झाड़ियाँ तथा कई प्रकार के छोटे-छोटे प्रकन्दयुक्त शाक होते हैं। इन वनों को भी निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है :–

(i) **रोडोडेन्ड्रौन क्षुप भूमि :**

लगभग 4,000 से 4,300 मीटर की ऊँचाई पर पाए जानेवाले इन वनों को ठंड के दिनों में भीषण हिमपात का सामना करना पड़ता है। यहाँ पाए जानेवाले पौधों में रोडोडेन्ड्रॉन, बार्बेरिस, रोजा, फैगोपाइरम, बिस्टॉर्टा, एनाफैलिस, पोटेंटिला, रियम, आदि वंश की जातियाँ प्रमुख हैं।

(ii) **नाटे रोडोडेन्ड्रॉन मीडोज़ :**

इस प्रकार के वनों में रोडोडेन्ड्रॉन की कई नाटी जातियाँ जो लगभग 0.5 मीटर की ऊँचाई वाली

होती हैं, प्रचुरता में पाई जाती हैं। 4,200 से 4,600 मीटर की ऊँचाई पर पाए जानेवाले ये वन ठंड के दिनों में पूर्णतः हिमाच्छादित रहते हैं। यहाँ रियम, सॉस्यूरिया, इफेड्रा, सैक्सीफ्रैगा, सेडम, जंक्स, एनीमोन, आदि वंश की कई जातियाँ पाई जाती हैं। प्रकन्दयुक्त लंबी जड़ों की उपस्थिति के कारण ये जातियाँ प्रतिकूल वातावरण में अपने अस्तित्व की रक्षा में सक्षम हैं।

(iii) **उच्च तुंगता वाले घासनुमा मीडोज़ :**

नागुला, तवांग टॉप तथा सेला टॉप जैसे लगभग 5,000 मीटर तथा उससे भी ऊपर की ऊँचाई वाले क्षेत्रों के पाई जाने वाली ये वनस्पतियाँ ठंड के दिनों में पूर्णतः बर्फसे ढकी रहती है। इन क्षेत्रों में वृक्ष बिल्कुल भी नहीं पाए जाते तथा प्रमुख वनस्पतियों में कुछ शाक जैसे –प्रिमुला, रियम, सैक्सीफैगा तथा रोडोडेन्ड्रॉन की कुछ जातियाँ पाई जाती हैं।

इस प्रकार तवांग जिला वनस्पति-विविधता के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। परन्तु पिछले कुछ वर्षों में इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में पेड़ों की कटाई, बढ़ता शहरीकरण, जंगली पदार्थो का अंधाधुँध दोहन के कारण यहाँ की वनस्पति-विविधता पर नकरात्मक असर पड़ा है जो चिंताजनक है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि न केवल सरकारी संगठन बल्कि गैर-सरकारी संगठन भी इस क्षेत्र की वनस्पति-विविधता के संरक्षण हेतु आगे बढ़े तथा इस हेतु कुछ सकारात्मक प्रयास किए जाएँ जैसे – स्थानिक एवं विरल पौधों की खेती, संपूर्ण क्षेत्र की गवेषणा एवं वनस्पति सर्वेक्षण, राष्ट्रीय उद्यान तथा वन्यजीव अभयारण्यों की स्थापना आदि। इस प्रकार हम न सिर्फ इस 'पृथ्वीलोक के गुप्त स्वर्ग' की सुंदरता की सुरक्षा कर पाएँगे बल्कि आनेवाली पीढ़ियों के स्वर्णिम भविष्य का निर्माण कर पाने में भी सक्षम हो सकेंगे।

———————

जल अभाव, दूषित वायु, कुम्हला जीवन फूल।
पर्यावरण सुरक्षा कर मानव सुधार ले अपनी भूल।।

नभ-जल-स्थल से ही बनता है
धरती का आवरण।

करें सदा हम इनकी रक्षा
रखें स्वस्थ पर्यावरण।।

विशाल समुद्री खजाना–समुद्री शैवाल

सोनाली पिवलटकर एवं पी. एस. एन. राव
भा. व. स., पश्चिमी परिमण्डल, पुणे

भारत का सागरतट 7500 कि.मी. है। यहाँ लगभग 841 समुद्री शैवालों की विविध प्रजातियों में 434 रोडोफाइटा, 191 फियोफाइटा और 216 क्लोरोफाइटा हैं। सागर तटीय राज्य गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, उड़िसा, लक्षद्वीप तथा अंडमान-निकोबार में ये शैवाल पाये जाते हैं।

समुद्री शैवाल उपजगत थैलाफाइटा के अन्तर्गत आते हैं। ये अपने विभिन्न रंगों और आकारोंसे लोगों को आकर्षित करते है। ये एक से. मी. से साठ से. मी. या उससे भी अधिक लम्बे होते हैं। ये ज्वार भाटा के समय समुद्र में 150 मी. की गहराई में तथा खाड़ी और बैक वार्टस में पाई जाती है। पत्थर, समुद्री वनस्पति के तने, प्रवाल आदि से चिपके हुए परजीवी जीवन व्यतीत करते हैं।

प्रस्तुत लेख में समुद्री शैवालों के महत्व एवं उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है।

समुद्री शैवालों के विविध उपयोग

1. खाद्य पदार्थ के रूप में :

समुद्री शैवालों का उपयोग जापानी और चीनी लोगों के द्वारा खाद्य के रूप में किया जाता है। शैवाल जैसे–कालर्पा मोनोस्ट्रोमा; हरित शैवाल सरगासम, हाइड्रोक्लथ्रस, लेमिनेरिया आदि; भूरी शैवाल एवं पोरफायरा, ग्रेसिलेरिया, इयुश्चुमा, लारेंसिया, एकंथोफेरा आदि। लाल शैवाल में प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है। इस शैवाल से जापान, चीन, कोरिया, मलेशिया, फिलीपीन्स आदि देशों में सूप, सलाद और करी तैयार होता है। जापानी लोगों के भोजन में 30% भाग समुद्री शैवालों का होता है।

इनमें विटामिन ए; बी, $ब^2$, $बी^6$ $बी^{12}$ प्रोटीन, रेशा, कैलशियम, फास्फोरस, लोहा, सोडियम, मैग्नीशियम, पोटैशियम आदि पोषक तत्व पाये जाते हैं। पोरफायरा में प्रोटीन और विटामिन प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इनको कच्चा, उबालकर, सलाद, सब्जी, अचार, मुरब्बा, जाम, जेली, पुडिंग के रूप में खाया जाता है। इनका उपयोग सीजनिंग, रेलिशिंग तथा मसालों में किया जाता है।

क्ई देशों में पोरफायरा (लाल शैवाल) का अनाज के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह जापान, में 'नोरी', चीन में 'झीकाई', इंग्लैंड में 'लवर', स्कॉटलैंड में 'स्लेक', और आयरलैंड में 'स्लाउकेम' के नाम से प्रचलित है। इनमें विटामिन, ए, बी, $बी_2$, $बी^6$, $बी_{12}$, निआसिन तथा फोलिक अम्ल अधिक होते हैं। इनमें अमीनो अम्ल 10 से 30 प्रतिशत व प्रोटीन 14 से 55 प्रतिशत होती है जो दैनिक उपयोग में आने वाली सब्जियों से अधिक मात्रा में है।

2. समुद्री जन्तुओं के आवास के रूप में

सामान्यतः विशाल आकार के समुद्री शैवाल जैसे कालर्पा, सारगासम, पैडाइना, ग्रेसिलेरिया, लेमिनेरिया आदि का उपयोग समुद्री जन्तु अपने आवास के रूप में करते हैं।

3. कृषि में

समुद्री शैवालों में अधिक मात्रा में पोटैशियम, लवण और नाइट्रोजन तथा अल्पमात्रा में फास्फोरिक अम्ल होता है। खेती में इनका अधिक उपयोग करने से जल में घुलनशील खनिज और अंश तच्व लेने में पौधों को आसानी होती है, उनका अधिक विकास होता है।

4. आयोडीन के उत्पादन में औद्योगिक उत्पाद के रूप में

(i) सामान्यतः भूरी शैवाल आकार में बड़ी होती हैं, जैसे लेमिनेरिया, फ्यूकस सारगासम जिन्हें 'कल्पस' कहा जाता है। इनमें आयोडिन प्रचुर मात्रा में होती है। लेमिनेरिया, फ्युकस एवं सारगासम समुद्री शैवालों के कारण जापान प्रतिवर्ष एक सौ टन आयोडिन प्राप्त करता है।

(ii) अगर - अगर के उत्पादन में

अगर-अगर लाल समुद्री शैवालों से प्राप्त होता है जिनमें अगरास, अगरोसपोक्टिन इत्यादि रासायनिक तत्व होते हैं। जेलीडियम, ग्रेसीलेरिया, हिपनिया, करोलिना, टेरीक्लेडिया जैसी शैवाल अगर के प्राथमिक स्रोत है। जापान और चीन में 'अगर -अगर' जेली, सूप को गाढ़ा करने, आइसक्रीम, डेजर्ट और पेस्ट्री आदि में उपयोग किया जाता है। कागज उद्योग, गोंद बनाने, चमड़ा कारखानों प्रसाधन सामग्री एवं औषधि में भी इनके उपयोग होते हैं। स्नेहक (लैक्सेटिक) के रूप में और सूक्ष्मजीव संवर्धन में भी इनकी एक भूमिका हैं।

(iii) एल्जीन और काराजिनन उद्योग में

एल्जीन उद्योगमें भूरे शैवाल का उपयोग किया जाता है। इनमें सोडियम एल्जीनेटस होते हैं जिनका उपयोग जल प्रतिरोधी वार्निश में होता है। डाइज और नाइफ हैण्डल में भी ये काम आते हैं। एल्जीनेट में डी-ग्लूकोरोनिक अम्ल व एल्मनरोनिक अम्ल जैसे रासायनिक तत्व होते हैं। एल्जीन का उपयोग आइसक्रीम, शरबत में स्टेबिलाइजर के रूप में किया जाता है। कागज को मुलायम बनाने तथा कागज पर स्याही स्थापित करने की क्षमता बढ़ती है। रंग को गाढा करने तथा दवा की गोली बनानेमें एल्जीनेट्स का उपयोग किया जाता है। इससे दाँतों का आवरण एवं इम्प्रेशन, शैम्पू, टूथपेस्ट और सौंदर्य प्रसाधन की सामग्री बनती है।

सामान्यतः कोण्ड्रस, जैगरटिना, युश्हेमा, हिपनिया में काराजिनन पाया जाता है। कारजिनन में 1, 3 लिंक्ड, बी - ड़ी- गल्वपायरेंसिल और 1, 4 लिंक्ड ए-डी-गल्वपायरेंसिल जैसे रासायनिक तत्व होते हैं। हिपनिया और युकुमा काराजिनन का मुख्य स्रोत है। इसका उपयोग चाकलेट दुग्धजन्य पदार्थ, डेजर्ट, कन्फेक्सनरी, टूथ पेस्ट, इलेक्ट्रोफारेसिस, लोशन्स, क्रीम और शैम्पू में होता है।

भारत में भावनगर (गुजरात) स्थित सेंट्रल साल्ट एवं मेरिन केमिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट (सी एस एम सी आर आइ) तथा सेंट्रल मेरिन फिशरीज रिसर्च इंस्टीट्यूट (सी एम एफ आर आइ) ऐसी संस्थाएँ जहाँ समुद्री शैवालों पर वैज्ञानिक अनुसन्धान किया जाता है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पश्चिमी परिमण्डल, पुणे व अण्डमान एवं निकोबार परिमण्डल, पोर्टब्लेयर में भी समुद्री शैवालों पर अनुसन्धान किया जा रहा है।

पौष्टिक एवं अन्य खाद्य पदार्थो में हो रही लगातार कमी के कारण भविष्य में समुद्री शैवाल का उपयोग भारत में भी खाने के लिए किया जा सकता है। समुद्री शैवालों में उल्लिखित गुणों के कारण अनुसन्धान कर्त्ताओं को इन पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

जैट्रोफा (Jatropha)

आर. के. गुप्ता
ए. के. बैश्य एवं
श्याम किशोर महतो
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

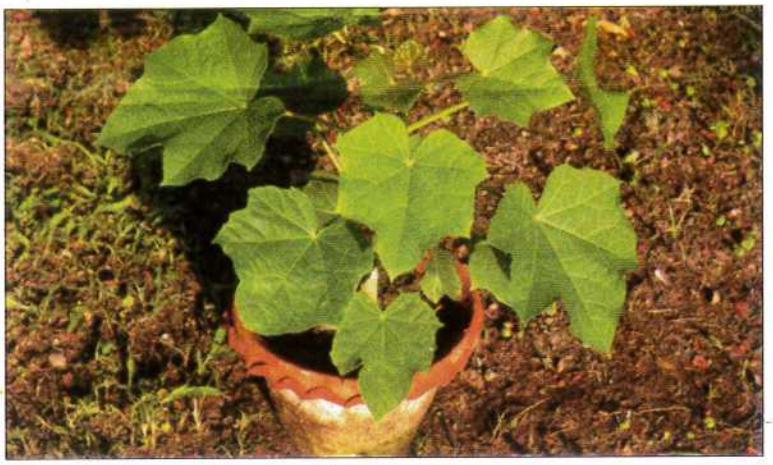

जैट्रोफा कर्कस

जैट्रोफा कर्कस ट्रॉपिकल (उष्ण कटिबंधीय) अमेरिका एवं पश्चिम एशिया में पाया जानेवाला एक बहु उद्देशीय तेल पैदा करने वाला छोटा पौधा है। इसे सामान्यतः 'फिजिक नट' एवं 'पर्जिना नट' के नाम से जाना जाता है। भारतीय भाषाओं में यह 'रतनजोत' के नाम से प्रसिद्ध है। औषधि के रूप में इसका उपयोग सिर-दर्द, दाँत-दर्द एवं समय से पूर्व बालों को गिरने से रोकने में किया जाता है। ''जैट्रोफा कर्कस'' यूफोर्बियेसी' कुल का पौधा है। इसमें रस (लैटेक्स) उत्पन्न करने की प्रवृत्ति होती है जिसके कारण जानवर इसे खा नहीं पाते हैं। इसकी फसल बहुत ही सख्त तथा अनावृष्टि-सहिष्णु होती है एवं इसे सीमान्त भूमि में कम-से-कम निर्विष्ट से उगाया जा सकता है।

जैट्रोफा जाति की कुल ज्ञात 175 प्रजातियाँ हैं जिनमें से भारत में ही इनकी केवल 12 प्रजातियाँ पायी जाती हैं। 'जैट्रोफा कर्कस' का भविष्य तेल पैदा करने एवं ईंधन की पूर्ति करने की दिशा में आशाओं से भरा है।

''जैट्रोफा कर्कस'' सब-ट्रापिकल (उष्ण कटिबंधीय) एवं ट्रापिकल (उष्ण कटिबंधीय) जलवायु में अच्छी तरह उगता है। यह अत्यधिक गर्मी सहन कर सकता है परन्तु ओले नहीं सह पाता है। 'जैट्रोफा कर्कस' को उत्तर प्रदेश के सभी जिलों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

जैट्रोफा को कई तरह की मिट्टियों पर उगाया जा सकता है एवं इसे सीमान्त् भूमि तथा बंजर मिट्टी में भी अच्छी तरह उगाया जा सकता है। उन्नत ऊपज के लिए, पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ युक्त मिट्टी वरीय माना जाता है। फसल की बेहतर स्थापत्य एवं पैदावार के लिए औसत दर्जे की उर्वरकता आदर्श मानी जाती है।

जैट्रोफा सामान्यतः बीज द्वारा उगाया जाता हैं। अच्छी तरह विकसित एवं फूले हुए अंकुरित बीजों को नर्सरी की उभरी हुयी क्यारियों में बोते हैं। नये अंकुरित पौधों को और विकसित होने के लिए 7' x 5' आकार की प्लास्टिक की थैलियों में रखा जाता है। प्लास्टिक की थैलियों को 1:1:1 के अनुपात में मृदा, बालू एवं कार्बनिक पदार्थो से भरा जाता है। फिर जब अंकुरित पौधों में पत्तियाँ निकल आती हैं, तो उनका रोपण किया जाता है।

प्रजनन के लिए जैट्रोफा के अर्द्ध-काष्ठीय एवं काष्ठीय लकड़ी के कटे हुए भागों का भी उपयोग किया जाता है। बेहतर जड़ निकलने के लिए सामान्यतः 1000 पी. पी. एम. का आई.बी.पी. का व्यवहार किया जाता है। फिर भी काटे हुए भाग वाली जड़ों को वर्षा वाली खेतो के लिए बेहतर नही समझा जाता है क्योंकि उनमें अंकुरित बीजों की तुलना में अनावृष्टि वाली सख्ती की कमी होती है।

जैट्रोफा का रोपण :– एक हेक्टेअर भूमि में, 2000 पौधों को 2.5 x 2.0 मी० के अंतराल में लगाया जाता है। पौधों को लगाने से पूर्व 30 x 30 x 30 सेमी० के गड्ढे खोदे जा सकते हैं एवं उनमें मृदा तथा कार्बनिक पदार्थ (500 ग्राम फिम + 100 ग्राम नीम केक) भरा जा सकता है। अंकुरित पौधों के उत्तम स्थापन के लिए मॉनसून (जून-जूलाई) अनुकूल समय है।

खाद एवं उर्वरक :– दूसरे वर्ष के बाद से उर्वरकों का व्यवहार किया जाता है। मार्च-अप्रेल के दौरान, 1 हेक्टेअर भूमि के लिए 150 किलोग्राम सिंगली सुपर फास्फेट एवं सितम्बर-अक्तूबर के दौरान 40:100:40 के अनुपात में नाइट्रोजन, फॉस्फेट एवं पोटेसियम का व्यवहार किया जा सकता है। चोथे साल के बाद 10% सुपर फॉस्फेट केवल प्रति वर्ष बढ़ाया जा सकता है।

सिंचाई :– पौधे लगाने के तत्काल बाद सिंचाई आवश्यक है। पौधे लगाने के तीसरे दिन के बाद जीवनदायी सिंचाई देना चाहिए। उसके उपरान्त, साप्ताहिक अंतराल पर सिंचाई बेहतर माना जाता है। फिर भी ग्रीष्म ऋतु में एक महीना में कम-से-कम दो बार सिंचाई करना अनिवार्य है। छिड़काव द्वारा सिंचाई से बहुत सारे घास-पात बढ़ जाते हैं, इसलिए इसको नहीं कराना चाहिए।

खेती के बाद :–जैसे और जब आवश्यकता होने पर निराई की जाती है। टर्मिनल में अधिक पार्श्विकता के लिए 6 मास की अवधि पर छंटाई करनी चाहिए।

शीघ्र पुष्पित होने पर, उत्तम बीजकोष (फली) वृद्धि एवं पैदावार के लिए, 100 पी.पी.एम. जी.ए.-3 प्रति हेक्टेअर की दर से छिड़काव किया जा सकता है। पौधों को पुनः उगाने के लिए, जमीन के करीब से 45 सेमी० की ऊँचाई छोड़कर काटा जा सकता है। इससे वृद्धि तेजी से होती है एवं वर्ष की अवधि में पैदावार करना शुरू करने लगेंगे। यह वृद्धि एवं पैदावार बनाये रखने में उपयोगी सिद्ध होता है।

पैदावार :– बीज बोने के डेढ़ वर्ष बाद से पौधें में फूल आने लगते हैं जबकि काटे हुए भाग द्वारा लगाए गए पौधें 8वे महीने में ही फूल देने लगते हैं। जैट्रोफा को सिंचित भूमि में लगाया जाता है तो उनमे साल भर फूल निकलते हैं। वर्षा वाली परिस्थिति में फूल उगना केवल एक ऋतु तक सीमित होता है। आर्थिक पैदावार चौथे वर्ष के बाद से आरम्भ होता है। सुखे हुए फलों को संग्रहित करके मशीन द्वारा या शारिरिक श्रम द्वारा अलग किया जाता है। तेल निकालने से पहले बीजों को धूप में तबतक सुखाया जाता है जबतक कि आर्द्रता 6-10% न हो जाए। जैट्रोफा की पैदावार 3000 किलोग्राम प्रति हेक्टअर आँकी जाती है।

पेस्ट एवं बीमारी :– पौधों को प्रभावित करने वाले दो प्रमुख पेस्ट 'बार्क ईटर' (ईण्डरबेला प्रजाति / Inderbella species) एवं पॉड बोरर' (Pod Borer) हैं। प्रति लीटर पानी में 2.0 मिलीलीटर 'डायनेथोएट' (Dianethoate) का व्यवहार करके उनपर नियंत्रण पाया जा सकता है।

'कॉलर रॉटिंग (Collar Rotting) से भी शुरू-शुरू में समस्या हो सकती है। प्रति लीटर पानी में 2 मिलीलीटर 'ताम्र ऑक्सीक्लोराईट' (Copper Oxychlorite) उपयोग करने से इसपर नियंत्रण किया जा सकता है।

खेती पर खर्च :–फसल लगाने वाले साल में खर्च लगभग 25,400/- रू प्रति हेक्टेअर के आसपास पड़ता है। तदुपरान्त किसानों को केवल रख-रखाव एवं फसल की कटाई का खर्च उठाना पड़ता है। इसमें वार्षिक खर्च 2,500/- रू. प्रति हेक्टेअर के आसपास हो सकता है। वार्षिक बीज पैदावार 3,000 किलोग्राम हो सकती है एवं 5 रू. प्रति किलो के दर से किसान 12,500/- रू. की नेट आमदानी कर सकता है। यह आमदनी अगले दस वर्षों तक बरकरार रहती है। उसके बाद वार्षिक बीज पैदावार 6500 किलोग्राम प्रति हेक्टेअर हो जाती है एवं लाभ भी उसी अनुपात में बढ़ जाता है।

उपयोग :– सदियों से छत्तीसगढ़ के पहाड़ी इलाका में रहने वाले आदिवासी (उरावं) जैट्रोफा के बीजों को लोहे के तार में पिरोकर जलाते हैं जिसका उपयोग रोशनी के लिए मशालों की तरह करते हैं। उरावं जनजाति जैट्रोफा का तेल पीते हैं जिससे पेट साफ रहता है। इसके डंठल का दातून के रूप में व्यवहार करने से मसूड़ों की सूजन में कमी आती है। जैट्रोफा के पौधे को अन्य फसलों के किनारे-किनारे बेड़ा की तरह लगाते हैं क्योंकि जानवर इसे चर नहीं सकते इसलिए फसलों का नुकसान नहीं हो पाता है। इसका उपयोग साँपों को दूर रखने के काम में भी आता है।

कच्चे वनस्पति तेल को सीधे-सीधे या डीजल में मिलाकर यांत्रिक संपीड़न ईंजन में व्यवहार किया जा सकता है। लेकिन अधिक चिपचिपाहट विशेष रूप से व्यापक निम्न ताप पर होने की वजह से, पहले इसे ईस्टर में बदला जाता है जो जैविक डीजल का सामान्य रूप है। जैट्रोफा तेल के ईस्टरीकरण के उपरान्त, इसमे उपस्थित ग्लिसरिल को हटाकर शुद्ध जैविक डीजल प्राप्त किया जाता है। जैविक डीजल उत्पादन पॉयलट प्लान्ट में वेसल के साथ तापक (Heater) या भबका (Boiler) मिथेनल और तेल मिश्रित करने के लिए ईस्टरीकृत बर्तन, स्थापित होने एवं धोने के लिए अलग-अलग टैंक की आवश्यकता होती है।

उपर्युक्त यूनिट द्वारा 250 लीटर जैविक डीजल एक दिन में तैयार किया जा सकता हैं। यूनिट का अनुमानतः खर्च दो लाख रूपये के लगभंग होता है।

जैविक डीजल पारम्परिक डीजल की तुलना में अच्छा ईंधन है एवं इसका उपयोग करने से ईंजन की आयु बढ़ती है। इससे अवशेष पदार्थो में भी कमी होती है, 31% कार्बन मोनोऑक्साइड को 21% एवं कुल हाइड्रोकार्बन को 47% तक कम करता है।

जैट्रोफा के पौधों पर बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय के कृषि विभाग के शोधकर्ता सराहनीय कार्य कर रहे हैं। भारतीय वनस्पति उद्यान, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा की नर्सरी में जैट्रोफा के पौधों का सफलतापूर्वक रोपण किया गया है।

———————

समृद्ध देश के हैं ये लक्षण।
अधिक उपज और वन संरक्षण।।

* * *

पर्यावरण का प्यारा संबल।
स्वच्छ, जल, थल, वायुमंडल।।

मूगा रेशम उद्योग में लिट्सिया की भूमिका

तृणा भुंइया एवं परमजीत सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

लिटसिया मोनोपेटेला

भारत में रेशम उत्पादन व्यावसायिक स्तर पर होता है जिसमें पचास लाख लोग कार्यरत हैं। आठ हजार पाँच सौ मिट्रिक टन रेशम प्रतिवर्ष तैयार होता है। चीन के बाद रेशम उद्योगमें भारत का ही स्थान है। रेशम के चार प्रकार में पूर्वोत्तर भारत में मूगा रेशम के उत्पादन की प्राचीनतम परम्परा है। मूगा रेशम के कीड़े 'एंथेरेइया असामा (पर्यायवाची–एंथेरेइया एसेमेंसिस,) हिमालय, असम की ब्रह्मपुत्र घाटी, मेघालय की पूर्वी गारो पहाड़ियाँ नागालैंड तथा दक्षिण त्रिपुरा में पाई जाने वाली सेरिसिजेनस कीट है। पूर्वोत्तर भारत में इन कीटों को बड़े पैमान पर अर्धपालतू बनाकर रेशम उत्पादन किया जाता है।

मूगा रेशम के कीड़ों के प्राथमिक तथा द्वितीयक आश्रयी पौधे

ऐतिहासिक रूप से ''रॉयल सिल्क'' नामसे परिचित मूगा रेशम का उत्पादन सबसे पहले चीनमें आरंभ हुआ। वहां रेशम के कीड़े लिटसिया कुबेबा की पत्तियाँ खाते थे। आज की तुलना में उस समय का रेशम निम्न कोटि का था। वर्तमान समय में मूगा कीट पर्सिया बॉम्बिसिना (असमी में सोम) तथा लिटसिया मोनोपेटेला (असमी में सोअलु) खाते हैं। इसके अतिरिक्त पूर्वोत्तर में व्याप्त लॉरेसी कुल के कुछ अन्य पौधे भी इनके खाद्य हैं। लिटिसिया वंश की आश्रयी जातियों की सूची निम्नलिखित हैं :

पौधों का प्रकार	लिटसिया की जाति	स्थानीय नाम
प्राथमिक आश्रयी पौधे	लि. मोनोपेटेला	सोअल
द्वितीयक आश्रयी पौधे	लिं. सेलिसिफोलिया	दिघलेती
	लि. कुबेबा	मेंजकरी
	लि. निटिडा	कोथलुआ

रेशम के नन्हें कीड़े जब पर्सिया बॉम्बिसिना के पत्ते को खाते हैं तो अच्छे किस्म का रेशम उत्पन्न होता है। पर जब वे मोनोपेटेला के पत्तों को खाते हैं तो प्रजनन की दर बढ़ जाती है। पहला पौधा रेशम के अधिक उत्पादन तथा दूसरा पौधा अधिक प्रजनन के लिए लोग रेशम के कीड़ों को खिलाते हैं।

लिटसिया मोनोपेटेला के पत्ते पर एथेरेईया असाना

रेशम कीट पालन

परम्परागत रूप से रेशम के कीट को यत्र-तत्र ऊँचे पेड़ों पर पाला जाता था। व्यवसायिक स्तर पर आश्रयी पौधे वैज्ञानिक पद्धति से लगाए जातें हैं और उनकी ताजा पत्तियों से रेशम का अधिकतम उत्पादन होता है। ये पौधे बलुई मिट्टी में लगाए जाते हैं जहाँ 3x3 मी या 5x5 मी. भूखण्ड में 4.5 एवं 5.0 के बीच पी एच होता है। असरकारी प्रबन्धन हेतु पौधों की नियमित छँटनी होती है। इससे टहनियों के परिमाण एवं गुणवता वृद्धि के साथ 15-20 फीट तक पौधों की ऊँचाई सीमित रहती है। स्वाभाविक रूप से ये पेड़ 50-60 फीट ऊँचे होते हैं। अधिकतम कीट पालन के लिए पेड़ की जड़ो में 4-5 शाखाओं को बढ़ने दिया जाता है, इन शाखाओं में प्रत्येक के 2-3 प्रशाखाओं की देखभाल की जाती है। यह सिलसिला वर्षों तक चलता है और वे पेड़ 20-25 वर्षों तक काम आते हैं।

रेशम कीट के अंडे छिद्रयुक्त बक्सों में रखकर उनकी खाद्य पत्तियाँ डाल दी जाती है। कीट बनते ही अंडों से निकले कीट लार्वा उन पत्तियों पर रेंगते हुए उन्हें खाने लगते हैं। उन्हें नर्म ब्रश से नाजुक पत्तियों पर रख दिया जाता है। बारी बारी से उन्हें बागके आश्रयी पौधों पर अंडा देने का अवसर दिया जाता हैं। पौधो:की पत्तिया खाकर वे बड़े होते हैं। आकार के हिसाब से उन्हें छाँटकर सघन टहनियों वाले पेड़ो पर पहुँचाया जाता है। साधारणतः 4-5 (शीतकाल में 8-10) दिनों में ये कीट से कोया (ककून) बनने लगता है। उन्हें बाँस टोकरियों में इकट्ठा किया जाता है। कोये के सख्त होने पर उनसे रेशम के धागे निकाले जाते हैं। विभिन्न मौसम में और विभिन्न आश्रयी पौधों पर पले कीट से प्राप्त रेशम के वजन, गुणवत्ता एवं धागों की लम्बाई में अन्तर होता है।

आश्रयी पौधों के कीट से प्राप्त रेशम के परिमाण

लगभग सौ रोगमुक्त अंडों से 60 कोये प्राप्त होते हैं। हानिकारक जन्तुओं के आक्रमण से 15-20% की कमी जा जाती है। पोषण स्तर में एक कीट अपने जीवन-चक्र में 70-80 ग्राम पत्तियाँ खाता है। इसमें 80 प्रतिशत वे विकास के पॉचवें चरण में खाते हैं। एक आश्रयी पौधे में 7-15 कि. ग्रा. पत्ते होते हैं। अर्थात् पोषण क्रम में एक आश्रयी पौधा 700-1,500 कीटों को भोजन देता है। लगभग 3,500 कीट कुल एक किलोग्राम रेशम देते हैं। अर्थात् तीन पौधों से एक किलोग्राम रेशम प्राप्त होता है। आश्रयी पौधों के रोग ग्रस्त होने तथा प्रतिकूल मौसम के कारण परिमाण कम हो सकता है।

लिट्सिया मोनोपेटेला के साथ बीच-बीच में एक वर्ष के लिए खीरा-बैगन जैसी सब्जियों की खेती से स्थान एवं समय का सदुपयोग के साथ-साथ अतिरिक्त आय की जा सकती है।

———————

पीपल' सेल्यूलर जेल का एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक वृक्ष

राजेन्द्र प्रसाद पाण्डे एवं जी. एस. लकडा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पोर्ट ब्लेयर

ऐतिहासिक वृक्ष : फाइकस रांफी

पीपल का वृक्ष लगभग सभी स्थानों पर पाया जाता है। अण्डमान व निकोवार द्वीप समूह की राजधानी पोर्ट ब्लेयर स्थित सेल्यूलर जेल परिसर में प्रवेश द्वार से घुसते ही दाहिने ओर सबसे पहले ध्वनि एवं प्रकाश मंच के पास पीपल वृक्ष नजर आता है।

यह पीपल का वृक्ष साक्षी है जो दिल को दहला देने वाली अमानवीय यातनाओं एवं मृत्यु दण्ड का जो हमारे स्वतंत्रता सेनानियों को दी गयी। इन स'भी दास्तानों को ध्वनि एवं प्रकाश कार्यक्रम मे माध्यम से हर शाम लोगों को दर्शाया जाना प्रारंभ किया गया है। इस प्रकार के कार्यक्रम लोगों को सोचने पर मजबूर करते हैं कि स्वतंत्रता सेनानी किस प्रकार इस पीपल वृक्ष के नीचे बैठकर बातें करते, अपने जन्म भूमि से हजारो मील दूर, समुद्र से घिर निर्जन स्थान पर हमेशा भारत माता को स्वतंत्र करने के बारे मे सोचते रहते थे और उनमे से बहुत से लोग भारत की आजादी के लिये अपने प्राणों को निछावर कर चुके हैं। अपने देश की आजादी के दीवानो के नारों की गूंज सारे वातावरण को गुंजा देती रही होगी।

यह प्रसिद्ध ऐतिहासिक वृक्ष 29 जून 1998 को तूफान में गिर गया था। जिसे पुनः उसी स्थान पर स्थापित किया गया जो अपने चारों ओर घिरे चबूतरों मे करीब 6-8 मीटर ऊँचाई तक बढ़ गया है और ''ध्वनि एवं प्रकाश कार्यक्रम'' के दौरान इसकी चर्चा की जा है।

इस पीपल वृक्ष का नमूना आर. पी. पाण्डे द्वारा अध्ययन हेतु संग्रह किया गया और यह निकर्ष निकाला गया कि यह वृक्ष फाइकस रांफी है। पहले इस वृक्ष को फाइकस आरनोंसियाना माना गया था (राव 2001)।

फाइकस रांफी : यह वृक्ष 6-8 मीटर ऊँचा, पत्ता पर्णपाती, छाल भूरापन लिये हुए सफेद धब्बों से युक्त। पत्तियां 6-10 से. मी. लम्बी, 4.5-7.0 से मी. चौड़ी, अंडाकार नुकीली व पूंछाकार, आधार चौड़ा पर्णवृन्त ओर हल्का संकीर्ण पत्ती का किनारा सीधा, लहराता हुआ, रोम रहित, चमकदार, पत्ती के आधार से तीन स्पष्ट शिरायें व दो अस्पष्ट शिरायें पत्ती के मुख्य शिरा से दोनो ओर 4-6 शिरायें जोड़ो में। फल गोलाकार, पर्णवृन्त रहित पत्ती के कक्ष में दोनों ओर

फाइकस रांफी : फल व पत्ती

जोड़ो में लगे हुए, कच्चे फल हरे रंग व सफेद दाग युक्त, पूर्ण परिपक्व काले रंग के, नर पुष्प बहुत ही कम संख्या में, मादा पुष्प कुछ फूले से व 3 पत्र फल में लगे हुए, कुक्षिवृन्त पैले हुए से, वर्तिकाग्र मुदगर आकार के एकिन्स में अस्पष्ट छोटी ग्रंथियाँ लगी हुई। फूल व फल का मौसम सितम्बर से जून माह के अंतर्गत। साधारणतः अंडमान निकोबार में प्रायः सभी जगहो पर पाये जाते हैं।

सेल्यूलर जेल प्रेवश द्वार

फाइकस रांफी की अन्य दो जातियों फाइकस रिलिजियोसा ओर फाइकस आरनोंसियाना से निम्नलिखित अंतरों से स्पष्ट पहचान की जा सकती है :–

फाइकस रांफी	फाइकस रिलिजियोसा	फाइकस आरनोंसियाना
1. वृक्ष परजीवी व इसमें वायवीय मूल नहीं होती है।	1. साधारणतः यह परजीवी वृक्ष है पर उसमे वायवीय मूल होती है।	1. वृक्ष, बिना वायवीय मूल को होती हैं।
2. कोमल पत्तियां और अनुपत्र गुलाबी दिखते हैं।	2. कोमल पत्तिया और अनुपत्र दोनों गुलाबी दिखते हैं।	2. कोमल व परिपक्व दोनों ही व अनुपत्र सभी सिर्फ हरे ही होते हैं।
3. इसकी पत्तियां छोटी होती है।	3. इसकी पत्तियां भी छोटी होती है।	3. इसकी पत्तियां दोनो के अनुपात में बहुत बड़ी होती है।
4. पत्तियों का आधार कुछ छोटे और पर्णवृन्त (petioles) की ओर संकीर्ण व साथ में आधार से शिरायें निकलती है, शीर्ष भाग पूँछ के आकार व फलक के 1/5 भाग लम्बे व किनारा लहरदार होते है।	4. पत्तियों का आधार गोलाकार कभी कभार चौड़े आकार का, 5. आधार से 5-7 शिरायें निकलती है, पत्ती का अग्र भाग पूँछ के आकार व फलक के आधे भाग से भी लम्बा साथ ही किनारा लहरदार होता है।	4. पत्तियों का आधार गहराई से अंडाकार, आधार से 5 शिरायें निकलती हैं और शीर्ष भाग पूँछ के आकार व फलक के एक तिहाई से चौथाई तक लम्बी होती है। शिरा व पर्णवृन्त गुलाबी रंग के होते हैं।
5. अनुपर्ण (Stipule) 2.5 से.मी. तक लम्बे होते हैं।	5. अनुपर्ण बहुत ही छोटे, 1.5 से. मी. तक लम्बे होते हैं।	5. अनुपर्ण पूर्ण स्पष्ट व 4 से. मी. लम्बे होते हैं।
6. पर्णवृन्त(petioles) जुड़ा हुआ नहीं होता है और ज्यादातर फलक की लम्बाई से छोटा होता है।	6. पर्णवृन्त जुड़ा हुआ होता है और साधारणतः लम्बाई में फलक से बड़ा होता हैं।	6. पर्णवृन्त जुड़ा हुआ नहीं होता है ओर साधारणतः लम्बाई में बराबर या कुछ लम्बे भी हो सकते हैं।
7. फल (fig) पत्तियों के कक्ष मे जोड़ों में लगे होते हैं, कुछ पुराना निशान सा बना होता गोलाई आकार व शीर्ष मे दबा हुआ नहीं होता है, कच्चे फलों में गाढ़ा सफेद दाग होता है, परिपक्व फल काले व सहपत्र (bract) रोम रहित होता है।	7. फल पर्णवृन्त रहित, जोड़ों मे, गोलाकार, परिपक्व अवस्था में बैगनी रंग व साथ ही सहपत्र का रंग चाँदी जैसा होता है।	7. फल पर्णवृन्त रहित, या पर्णवृन्त सहित, पत्ती के निचली सतह मे जोड़ों में वा गुच्छों में होते हैं, फल के शीर्ष मे गड्डे सा होता है, पके फल पीले व भूरे रंग के होते है, सहपत्र रोम रहित होते हैं।

एजोला पिन्नाटा एवं एनाबिना एजोली का सहजीवन तथा उपयोगिता

प्रतिभा गुप्ता एवं शिव कुमार*
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता
*भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

पौधों एवं जीवधारियों में सहजीवन एक विशिष्ट लक्षण है जिनमें दो भिन्न प्रकार के पौधे या जीवधारी जीवनयापन के दृष्टिकोण से एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं एवं लाभान्वित होते हैं। सामान्यतः सहजीबी पौधों में लाइकेन 'शैवाल'' एवं ''कवक'' के सहजीव से उन्नत 'शैवाल' अथवा 'लाइकेन' प्रकृति में सहजीवन का अनुठा उदाहरण है। अन्त : पादपीय सहजीवन में लेग्यूमिनेसी कुल के पौधों की जड़ों में राइजोवियम नामक जीवाणु की उपस्थिति एन्थोसिरोस के थैलस में ''नास्टाक'' तथा ''साइकस'' की कोरोलाइड जड़ों में एनाबिना की उपस्थिति, इसी कड़ी में एजोला एवं एनाबिना का पारस्परिक संबध सहजीवन का एक उल्लेखनीय उदाहरण है। एजोला पिन्नाटा विश्व में उष्ण कटिबंधीय तथा न्यूजिनिया सम शीतोष्ण कटिबंधीय भागों जैसे–अफ्रीका, (उत्तर एवं दक्षिण), अमेरिका, आस्ट्रेलिया, मलेशिया, फिलीपीन्स, वियतनाम, न्यूजीनिया, कोरिया, दक्षिण-पूर्व एशिया जैसे चीन, जापान, बांगलादेश, पाकिस्तान, भारत एवं श्रीलंका में पाया जाता है। भारतवर्ष में यह उत्तर पूर्वी राज्य मेघालय, आसाम, प. बंगाल, उड़िसा, दक्षिण भारत, मध्य प्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, उत्तरांचल एवं महाराष्ट्र में पाया जाता है।

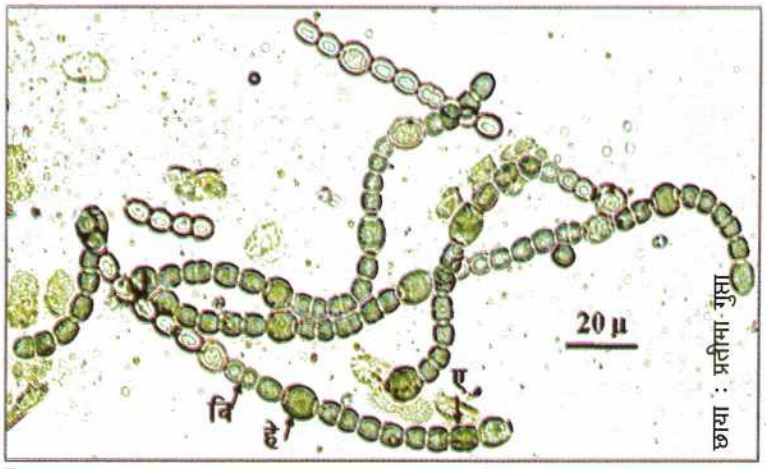

एजोला पिन्नाटा के तंतु

नील-हरित शैवालों के सर्वेक्षण के दौरान माल्दा जिला, पश्चिम बंगाल के विभिन्न 12 जलाशयों बाराबिल्ला बिल (आराई डांगा, रतुआ- 2), गरहल बिल (हरीपुर, चांचल- 1) सींगरा बिल (गंगा देवी, चांचल- 2), अधसोई बिल (पचला, हरिश्चन्द्रपुर- 1), जानीपुकुर बिल (सेरपुर, हरिश्चन्द्रपुर- 1), असीडोब बिल (उत्तर हरिश्चन्द्रपुर, हरिश्चन्द्रपुर- 1), पुलीन टोला बिल (चाँदीपुर, मानिकचक), जलसुक्खा बिल (काजीग्राम, इंगलिश बाजार) लक्ष्मीपुर बिल (लक्ष्मीपुर, इंगलिश बाजार), छोटा सागर दिग्धी (नादिरखानी, इंगलिश बाजार), दामुआ तालाब (कोनार, हरिश्चन्द्रपुर- 1) तथा जोरकुप्पा तालाब (कर्मानी ग्राम, इंगलिश बाजार) में एजोला पिन्नाटा पाया गया एवं उसका सूक्ष्मदर्शीय अध्ययन किया गया।।

एजोला पिन्नाटा एक छोटा, स्वतंत्र प्लावक फर्न है जो प्रायः जलाशयों नम मृदा, धान के खेतों, दलदलों तलाबों, झीलों, धीमी गति से बहने वाली नदियों मे पाया जाता है। सामान्यतः इसे ''डकवीड'' फर्न, ''तालाब'' फर्न, ''मच्छर' फर्न या ''मखमल'' फर्न के नाम से जाना जाता है। यह सालवीनिएसी कुल का सदस्य है परन्तु वर्तमान वैज्ञानिकों ने इसके एकल प्ररूपी होने के कारण ''एजोलेसी'' कुल में वर्गीकृत किया है।

एजोला का पौधा वार्षिक, त्रिभुजाकार, लगभग 1.0 से 3.0 से. मी. लम्बा तथा 1.0 से 2.0 से. मी. चौड़ा होता है (छायाचित्र -1। जड़ साधारणतः लम्बी, मूलरोम युक्त, जल के अन्दर लटकती रहती हैं। तना अत्यन्त छोटा एवं समद्विभाजी शाखा विन्यास युक्त, मुख्यतः पिच्छाकार पत्तियों से ढका होता हैं। पत्तियां शल्क की तरह होती हैं एवं एकान्तर क्रम में लगी होती हैं। पत्तियां दो भागों में विभाजित होती हैं। ऊपरी भाग प्रायः 1.0 से 2.0 मि.मी. लम्बा वायवीय स्थूल हरे / लाल रंग का प्रकाश संश्लेषण करने योग्य होता है। पत्तियों में रंग परिवर्तन पौधे की आयु प्रकाश संश्लेषण की गति एवं उसमें उपस्थित लवकों की प्रकृति पर निर्भर करता है। निचला भाग जल में निमग्न, वर्णक रहित एवं पतली भित्ति वाली कोशिकाओं की गुहाओं से युक्त होता है जिसमें नील-हरित शैवाल एनाबिना ऐजोली पाया जाता है (छायाचित्र - 2)। यह पौधा नर एवं मादा दोनों प्रकार के बीजाणु उत्पन्न करता है। इसमें अलैंगिक प्रजनन की दर अत्यन्त तीव्र गति से होती है अतः अनुकूल परिस्थितियों में यह लगभग 3 दिनों में अपने से दुगना हो जाता है तथा 10 से 15 दिनों में पूरे जलाशय को सघनता से आच्छादित कर देता है तथा दूर से देखने पर मखमल सदृश्य दिखता है (छायाचित्र-1)।

एनाबिना ऐजोली एजोला पिन्नाटा के प्रारम्भिक वृद्धि के समय प्रांकुर की अग्रस्थ कोशिकाओं में प्रविष्ट कर पौधे के ऊतकों में प्रवेश कर जाता है। सूक्ष्मदर्शी अध्ययन के अनुसार एनाबिना ऐजोली के तंतु अनेक अण्डाकार / पीपाकार, कोशिकाओं की शृंखला का बना होता है जिसमें प्रकाश संश्लेषण की क्रिया वर्णकों की उपस्थिति के कारण सामान्यतः अन्य पौधों की तरह ही होती है परन्तु तंतु में उपस्थित बड़ी अण्डाकार कोशिका हिट्रोसिस्ट मोटा तथा स्पष्ट होता है एवं इसके दोनो सिरों पर ध्रुवीय ग्रंथिकाए होती हैं (छायाचित्र - 3) इसमें प्रकाश संश्लेषण की क्रिया नग्वाय परन्तु नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता अत्यधिक होती है।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं सहजीवन :–

एनाबिना एजोली वायुमण्डल की निष्क्रीय नाइट्रोजन गैस को अवशोषित कर विकर नाइट्रोजिनेस की सहायता से अमोनिया में परिवर्तित कर देता है। जिसका उपयोग बाद में अमीनों अम्ल तथा अनेक प्रकार की प्रोटीन बनाने में होता है। नाइट्रोजन अणु में दो परमाणु होते हैं जो आपस में तीन बन्धों द्वारा जुड़े रहते हैं। इन बन्धों को तोड़ने हेतु 12 ए० टी० पी० अणुओं की आवश्यकता होती है। अतः इस प्रक्रिया में अत्यधिक ऊर्जा व्यय होती है जो प्रकाश संश्लेषण के द्वारा प्राप्त की जाती है। इन पौधों में एनाबिना ऐजोली के कारण नाइट्रोजन स्थिरीकरण के साथ-साथ प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया भी बहुत तीव्र गति से होती है। एजोला पिन्नाटा, एनाबिना एजोली को रहने का सुरक्षित स्थान प्रदान करता है साथ ही नाइट्रोजन स्थिरीकरण हेतु आवश्यक ऊर्जा (ए० टी० पी०) भी उपलब्ध कराता है। बदले में एनाबिना ऐजोली मातृ पौधे को प्रचुर, मात्रा में नाइट्रोजन युक्त पदार्थ उपलब्ध करा कर सहजीवन का निर्वाह करता है। इस प्रकार दोंनों एजोला पिन्नाटा एवं एनाबिना ऐजोली लगातार एक दूसरे से लाभान्वित होते हुए अपना जीवन-चक्र पूरा करते हैं।

उपयोगिता :–

एजोला पिन्नाटा एवं एनाबिना ऐजोली के सहजीवन के कारण यह अत्यन्त उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है। इसकी उपयोगिताए निम्न हैं :–

1. इसकी अनुसंधान एवं वैज्ञानिक अध्ययन हेतु सुगमता से कम लागत में संवर्धित किया जाता है।
2. यह वायुमण्डल में उपस्थित निष्क्रीय नाइट्रोजन को ग्रहण कर उसे अमोनियम नाइट्रेट् , नाइट्राइट· अमीनों अम्ल, इत्यादि में परिवर्तित करता है जो नाइट्रोजनीय अवयवों के रूप में पादप कोशिका का अंश बन जाते हैं एवं परिस्थितकी तंत्र की खाद्य शृंखला / नाइट्रोजन-चक्र में प्रत्येक जीवधारी तक पहुँचाते हैं।

3. इसका उपयोग धान के खेतों में पैदावार को बढ़ाने के लिए किया जाता है क्योंकि इसमें उपस्थित एनाबिना ऐजोली नाइट्रोजन स्थिरीकरण कर धान के पौधों हेतु आवश्यक नाइट्रोजन की आपूर्ति करता है।

4. एजोला पिन्नाटा एवं एनाबिना ऐजोली से बनी खाद को ''हरी खाद''कहा जाता है जो पूर्ण रूप से प्राकृतिक हानि-रहित तथा परिस्थितकी सम होती है एवं मृदा की उर्वरकता बनाये रखने में सहायक है।

5. इसका घरेलू पशुओं के पौष्टिक आहार, (चारे) के रूप में प्रयोग किया जाता है।

6. शुष्क एजोला पिन्नाटा का चूर्ण अत्यन्त उच्च मात्रा से प्रोटीन युक्त होता है तथा स्पाइरूलाइना के समान पोषक होने के कारण इसका प्रयोग शरीर में प्रोटीन की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

7. ताजे एजोला पिन्नाटा को अल्फा-अल्फा एवं अंकुरित दालों की तरह सलाद एवं सैंडविच मेंप्रयोग किया जाता है।

8. इसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन वसीय पदार्थ, विटामिन-ए, बी-12 बीटा कैरोटीन, केरेटीनायड्स, खनिज लवणों जैसे कैलशियम, फास्फोरस, पोटैशियम। आयरन, कापर, मेंग्नीशीयम, कोबाल्ट इत्यादि पाये जाते हैं जिसके कारण यह अत्यन्त ही पोषक एवं महत्वपूर्ण पादप है। इसमें उच्च मात्रा में प्रोटीन एवं लिगनिन की उपस्थिति के कारण यह पौष्टिक एवं सुपाच्य होता है।

9. जलाशयों में इनकी सघनता से वृद्धि के कारण, मच्छरों के प्रजनन तथा अन्य जलीय खर-पतवारों, शैवालों के ब्लूम पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

10. इससे जैविक गैस का उत्पादन कर पारम्परिक जीवाश्म ईंधन को बचाया जा सकता है।

———————

वन और जीव हैं जीवन की आस।
इन सबका तुम करो न नाश।।

भेषज विज्ञान : आयाम और संभावना

ए. बि. डी. सेलवम एवं नवीन चौधरी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

उद्भव और विकास

भेषज विज्ञान के अन्तर्गत मुख्य रूप से पादपीय औषधीयों की पहचान पृथककरण, उपयोग आदि के विषय में अध्ययन किया जाता है। भेषज विज्ञान (Pharmacognosy) शब्द का प्रयोग सबसे पहले 1815 में जर्मन वैज्ञानिक सी. ए. सेड्लर ने किया। यूनानी शब्द ''फार्माकॉन'' का अर्थ है औषधि, ग्नोसिस का अर्थ है ज्ञान अर्थात औषधि का ज्ञान। लगभग 90% औषधि पादपीय श्रोतों से आती है, बाकी जीव-जन्तु तथा खनिज संसाधन से।

रोगों की चिकित्सा में पौधों का प्रयोग प्राचीन काल से विकसित होने लगा था। पौधों के विभिन्न भागों जैसे जड़, तना, काष्ठ, छाल, पत्ती, फूल, बीज आदि की आरोग्य क्षमता की जानकारी पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होती रही एवं कालान्तर में इसका प्रलेखन भी हुआ।

उपकरणों के उपयोग के आधार पर भेषज विज्ञान का दो प्रकार अध्ययन से कर सकते हैं : परम्परागत तथा आधुनिक भेषज विज्ञान

भेषज विज्ञान का परम्परागत पक्ष

भेषज विज्ञान के परम्परागत पक्ष में अशोधित औषधि के वनस्पतीय (सूक्ष्मदर्शीय एवं स्थूलदर्शीय) तथा इन्द्रियग्राही (संवेदी चरित्र) का अध्ययन किया जाता हैं। स्थूलदर्शीय अध्ययन अशोधित औषधि का आकृतिक वर्णन अर्थात बाहयांतरणी अध्ययन है। स्कानिंग इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप (एस. इ. एम.) के द्वारा (पौधे, प्राणी, आदि) का सूक्ष्मदर्शीय अध्ययन किया जाता है, पर इसमें पौधे के भागों का सतह / आकृतिक विशेषताओं का अध्ययन किया जाता हैं। सूक्ष्मदर्शीय अध्ययन में अशोधित औषधि अंतः (आकारिकी) अध्ययन किया जाता है।

संवेदी स्वरूप में रंग, गंध, स्वाद, ध्वनि, स्पर्श का अभिलेखन होता है।

भेषज विज्ञान को आयुर्विज्ञान की शाखा माना जाती है। यह परम्परागत चिकित्सा पद्धति के आधार पर विकसित हुआ है।

असंख्य लोग रोगों की चिकित्सा के लिए आधुनिक पद्धति अर्थात् एलोपैथी की शरण में जाते है। अन्य पद्धतियों की अपेक्षा इससे अल्पकाल में चिकित्सा एवं प्रयोजनवश शल्य चिकित्सा भी होती है। आजकल लोग परम्परागत चिकित्सा के सम्पूर्ण गुणों के कारण उसे पसन्द करने लगे हैं। उसमें अवांछित प्रभावों की न्यूनतम आशंका होती है। भारत में चिकित्सा की तीन पद्धतियाँ हैं : सिद्ध, आयुर्वेद एवं यूनानी।

भेषज विज्ञान का आधुनिक पक्ष

भेषज विज्ञान के आधुनिक पक्ष में पौधों में विद्यमान सक्रिय रासायनिक घटक एवं उनकी चिकित्सीय सक्रियता आती हैं।

वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के साथ भेषजविज्ञान के अध्ययन में भी परिवर्तन हुआ है। अशोधित औषधि के अभिनिर्धारण हेतु भेषज वैज्ञानिक अध्ययन में अत्याधुनिक उपकरणों के साथ उपयुक्त प्रणाली एवं

तकनीक का प्रयोग कर रहे हैं। अपमिश्रण की जाँच के लिए स्कैनिंग इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप, सूक्ष्मदर्शी, डी. एन. ए. फिंगर प्रिटिंग तकनीक का प्रयोग हो रहा है। पौधों में विद्यमान सक्रिय रासायनिक घटकों को विलग करने के लिए गैस लिक्विड क्रोमोटोग्राफी (जी. एल. सी.), हाइ पर्फोमेंस लिक्विड क्रोमोटोग्राफी (एच.पी. एल. सी.) आदि का प्रयोग हो रहा है। अशोधित औषधियों सक्रीय यौगिकों के चिकित्सीय प्रभाव को समझने के लिए विभिन्न भेषज वैज्ञानिक पद्धतियाँ अपनाई गई है।

भेषज विज्ञान के निषेधात्मक पक्ष

भेषज विज्ञान में प्रत्येक पक्ष का अध्ययन होता है : जैसे– वनस्पति विज्ञान पक्ष, वनस्पति-रासायनिक पक्ष, भेषजगुण आदि। इसलिए अशोधित औषधि के बारे में सम्पूर्ण जानकारी नही मिलती है। भेषज विज्ञान से संबंधित अध्ययन विभिन्न विद्याओं के वैज्ञानिकों के संयुक्त प्रयास से ही संभव है।

भेषज विज्ञान का भविष्य

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा परम्परागत चिकित्सा प्रणालियों को स्वास्थ्य सुरक्षा पद्धति का अभिन्न एवं महत्वपूर्ण अंग मान लिया गया है। उनके प्रति जनसाधारण के दृष्टिकोण भी बदल रहे हैं। किसान से लेकर वैज्ञानिक तक इस विषयमें सभी रूचि ले रहे हैं।

भेषज विज्ञान का आज वह स्वरूप नहीं है जो पचास साल पहले था। उन दिनों यह अशोधित प्राकृतिक औषधि की जानकारी प्राप्त करने का साधन था, आज साध्य है। आज इसमें भेषज विज्ञान से सम्बन्धित सभी आवश्यक जानकारी समेकित है तथा भेषज विज्ञान की परिधि में काम करने वालों के अलावा वे भी रूचि ले रहे हैं जो विज्ञान की परिधि के बाहर हैं, जैसे औषधिय पौधों की खेती करने वाले, उनका संग्रह करने वाले एवं व्यवसाय करने वाले।

भेषज विज्ञान का आयाम बढ़ने से औषधीय पौधों की संख्या कम हो रही है। उनमें कुछ पौधे विरल, दुर्लभ और संकटग्रस्त लुप्तप्राय हो गये हैं। इन पौधों के उपयोग में यह ध्यान रखना अति आवश्यक है कि इनका भण्डार शून्य नहीं हो, ये चिरकाल उपलब्ध रहें।

———————

वृक्ष सुखद जीवन आधार।
रोको इन पर अत्याचार।।

जब हरियाली हो चारों ओर।
तब बढे मानव विकास की ओर।।

भारत से निर्यातित प्रमुख औषधीय पौधे

विनय रंजन
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा एवं
सुशील कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

पौधों का जड़ी-बूटी के रूप में उपयोग ऋगवैदिक काल से होता आ रहा है। चरक, सुश्रुत एवं अष्टांग हृदय संहिताओं में क्रमशः 1100, 1270, 1140 पादपों के संस्कृत नामों का उल्लेख मिलता है। वर्तमान समय में 2000-3000 आवृतबीजी पौधों की जातियों का उपयोग देशी चिकित्सा पद्धति जैसे आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध एवं लोक औषधि (folk medicine) में हो रहा है।

एल्पीनिया गलेंगा

पौधों को चिकित्सोपयोग की दृष्टि से दो प्रमुख वर्गो में बांटा जा सकता है–

(अ) वे जड़ी-बूटियों जिनसे निष्कर्षित क्रियाशील तत्व आधुनिक चिकित्सा पद्धति (allopathy) की औषधियों निर्माण में प्रयुक्त होती है।

रौलफिया सर्पेंटिना

(ब) वे जड़ी-बूटियॉ जो देशी चिकित्सा पद्धति जैसे आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध की औषधियों के निर्माण में प्रयुक्त होती है।

वस्तुतः वर्तमान में, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हो रहे विकास के फलस्वरूप एलोपैथी मे क्रान्तिकारी उपलब्धियां हासिल हुयी है। चूँकि इस चिकित्सा पद्धति द्वारा रोगों के निदान हेतु आने वाला खर्च आम आदमी आसानी से वहन नही कर सकता, यही कारण है कि लोगों का झुकाव देशी चिकित्सा पद्धति की ओर बढ़ा है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक विज्ञप्ति के अनुसार विश्व के विकासशील देशों की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या देशी चिकित्सा पद्धति पर ही निर्भर है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि पौधों से निर्मित औषधियां कम हानिकारक होती हैं तथा इनके उपयोग के बाद कोई कुप्रभाव (side effect)नही पड़ता है। विगत वर्षो में विकसित देशों जैसे अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, इटली एवं यूनाइटेड किंगडम इत्यादि मे भी हर्बल ड्रग्स के प्रति लोगों का विश्वास बढा और आकर्षण पैदा हुआ है जिसके फलस्वरुप हर्बल ड्रग्स का व्यवसाय विश्व पटल पर तेजी से फैला है। हमारा देश भारत भी इस व्यवसाय के क्षेत्र में एक प्रमुख केन्द्र के रूप में उभरा है तथा साइलम हस्क (इसबगोल की भूसी) एवं सेन्ना के उत्पादन एवं निर्यात में विश्व में अग्रणी है। इसके अतिरिक्त अन्य जड़ी-बूटियों जैसे वच, कुलंजन, अगर - अगर, इपीकाक, मुलैठी, जिमनिमा, सरसपरिला, मेंथा, रौलफिया सर्पेटिना, नक्स वोमिका, चिराता, विंका हर्ब, कुथ, नीम इत्यादि का निर्यात भी विश्व के विभिन्न देशों जैसे यूनाइटेड किंगडम, जर्मनी, इटली, संयुक्त राष्ट्र अमरीका, कनाडा, दक्षिण अफ्रिका, थाइलैंड, चीन, जापान, कोरिया, पाकिस्तान आदि को कर रहा है।

प्रस्तुत लेख में भारत से निर्यात होने वाली प्रमुख जड़ी बूटियाँ जो कि देश के विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में या तो प्राकृतिक रूप (wild) से या फिर संवर्धन (cultivation) के द्वारा प्राप्त हो रही हैं का उल्लेख किया जा रहा है। पौधों का ट्रेड नाम, वानस्पतिक नाम, कुल, प्राप्तिस्थान, प्रयोज्य अंग एवं रोगो के निदान में उपयोग, निर्यात की मात्रा एवं प्राप्त होने वाला राजस्व तथा प्रमुख देश जिनको निर्यात किया जाता है, के बारे में प्रस्तुत तालिका में जानकारी दी गयी है।

तालिका 1–भारत से वर्ष 2005-06 के बीच मे निर्यातित प्रमुख जड़ी-बूटियाँ

क्र० सं०	ट्रेड नाम	वानस्पतिक नाम, कुल	प्राप्ति स्थान	प्रयोज्य अंग एवं रोगों के निदान मे उपयोग	निर्यात (2005-2006)		
					मात्रा कि० ग्रा०	प्राप्त होने वाला (रू०)	प्रमुख आयातक देश
1	अगर-अगर	एक्यूलेरिया मालाकेन्सिस (थायमलिएसी)	प्राकृतिक एवं संवर्धन मेघालय, असम, त्रिपुरा, मणिपुर	हार्ट वुड-त्वचा रोग, आमतिसार	8652	8160066	हंगरी, मालदीव, यूनाइटेड ए० ई०
2	इपीकाक	सिफेलिस इपिकेकुन्ह (रूबिएसी)	संवर्धन दार्जिलिंग	जड़ एवं प्रकन्द-आमतिसार, वमन, कफ दमन	10505	2727274	यू० एस० ए०, द० अफ्रीका, बेल्जियम
3	कुथ	सस्युरिया कॉस्टस (एस्टेरेसी)	संवर्धन हि० प्र०, उत्तराखण्ड जम्मू-कश्मीर	जड़-त्वचा मांसपेशी रोग	10	2706	हंगरी
4	गेलंगल	अलपिनिया गेलंग (जिंजिबरेसी)	प्राकृतिक या संवर्धन दक्षिण एवं पूर्व उष्णकटिबन्धी क्षेत्र	प्रकन्द-श्वास संबंधी रोग, वायु विकार	360980	25703077	श्रीलंका, नीदरलैंड
5	चिराता	स्वरसिया चिराता (जेन्शिनिरूसी)	प्राकृतिक कश्मीर, प० बंगाल, सिक्किम	सम्पूर्ण पौध ज्वरनाशक, कृमिनाशक	34030	580611	पाकिस्तान, इजिप्ट, यू०ए० ई०
6	जिमनिमा	जिमनिमा सिल्वेस्टर (ऐशकलीपेडिएसी)	प्राकृतिक सम्पूर्ण भारत	पत्ती-पूर्ण मधुमेह	59225	7108754	यू०एस०ए जापान, मारिसश
7	नक्स-वोमिका	स्ट्रिक्नास नक्स-वोमिका (लोगानिएसी),	प्राकृतिक उत्तर-मध्य भारत	फल एवं बीज-ज्वर ज्वर, केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र	16000	176433	बंग्लादेश, यू०के०
8	नीम	एजाडिएरटा इण्डिका (मेलिएसी)	प्राकृतिक एवं संवर्धन सम्पूर्ण भारत	सम्पूर्ण पौध ज्वर, कृमि, कीट, नाशक, उदर रोग, त्वचा रोग	474169	17575958	अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, श्रीलंका, ग्रीक
9	बेलाडोना	एट्रोपा एक्यूमिनेटा (सोलेनेसी)	प्राकृतिक संवर्धन जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड	जड़ एवं पत्ती दमा, अलसर, पथरी	43030	1506965	फ्रांस, जर्मनी, श्रीलंका, जापान
10	मेंथा	मेथां प्रजाति (लेमिएसी)	संवर्धन उत्तर प्रदेश पंजाब, हरियाणा	पत्ती पाचन, वायुदोष	14005	962664	पाकिस्तान, यू० एस० ए०, यू०के०
11	वच	अकोरस केलमस (एरेसी),	प्राकृतिक एवं संवर्धन, सम्पूर्ण भारत,	प्रकन्द मिर्गी, उन्माद	29000	1015519	फ्रांस, बुल्गारिया
12	विंका हर्ब	केथरन्थस रोजियस (एपोसायनेसी),	प्राकृतिक एवं संवर्धन, सम्पूर्ण भारत	पत्ती एवं जड़ कैंसररोधी	1335467	48520598	फ्रांस, जर्मनी, हंगरी
13	सर्पेटिना	रौलफिया सर्पेटिना (एपोसायनेसी)	संवर्धन सम्पूर्ण भारत	जड़-मिर्गी, उन्माद रक्तचाप	905	95063	पाकिस्तान
14	लिक्वेरस	ग्लाइसीराइंजा ग्लेबरा (फेबेसी)	संवर्धन गुजरात	जड़ एवं प्रकन्द कफ दमन	26989	11853139	जर्मनी, यू०ए०ई०
15	सेन्ना	केशिया अंगस्टीफोलिया (सिजलपेनिएसी)	संवर्धन गुजरात, तामिलनाडु	पत्ती एवं फली उदररोग	11430180	239293076	जर्मनी, जापान, चीन, पोलैंड

16	सरसपरिला	हेमिडेसमस इण्डिका (ऐशकलपेडेसी)	प्राकृतिक मध्य प्रदेश, असम, बिहार, प० बंगाल, झारखण्ड	जड़ ज्वर नाशक चर्मरोग	36488	3258104	यू०एस०ए०, फ्रांस, जर्मनी, इटली
17	साइलम हस्क	प्लेनटेगो ओवेटा (प्लेनटागाइनेसी)	संवर्धन हरियाणा, गुजरात, राजस्थान	बीज एवं भूसी अतिसार, आमतिसार	24959905	2090616710	यू० एस० ए० स्पेन, मलेशिया
18	कम्बोज फल	गारसिनिया कम्बोजिया (क्लूसिएसी)	प्राकृतिक या संवर्धन कोंकन प० घाट, नीलगिरि, ट्रावनकोर	फल संधिवात	16662	1980479	कनाडा, कुवैत, हांगकांग

(स्रोत–महानिर्देशक, वाणिज्यिक सूचना एवं सांख्यकी, वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय, कोलकाता)

हमारे देश में आमतौर पर कुछ ही औषधीय पौधों की खेती की जा रही हैं। अधिकांशतः हम प्राकृतिक स्रोतों का ही दोहन कर रहे हैं जिसके कारण ये विशिष्ट जड़ी-बूटियाँ अपने प्राकृतिक वासों से विलुप्त होना शुरू हो गयी हैं। अगर यही क्रम अनवरत रूप से जारी रहा तो एक दिन ऐसा आयेगा जब हम इन बहुमूल्य जड़ी-बूटियों से वंचित हो जायेंगे। इन तथ्यों को ध्यान मे रखते हुए इन सभी जड़ी -बूटियों के प्राकृतिक दोहन पर अंकुश लगाने का प्रयास करना चाहिए तथा इनके संवर्धन पर बल देते हुए कृषिकरण की ओर अग्रसर होना चाहिए जिससे कि हमारे वंशज भी इन जड़ी-बूटियों का उपयोग कर सकें।

———————

इस पृथ्वी की दुःखद कहानी।
दूषित वायु प्रदूषित पानी।।

पेड़ लगाओगे सुख पाओगे।
काटोगे, बहुत पछताओगे।।

मत लो तुम वृक्षों की जान।
धरती होगी रेगिस्तान।।

सम्भालू (वाइटेक्स निगुन्डो) : पौधा एक गुण अनेक

हरीश सिंह 'भुजवान'
केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला, हावड़ा

सम्भालू

सम्भालू (वाइटेक्स निगुन्डा) वरबेनेसी कुल का एक पारम्परिक बहु उपयोगी औषधीय एवम् सुगंधित पौधा है जो पूर्वी एशिया से दक्षिण पश्चिम चीन के हिमालय क्षेत्र के गर्म इलाकों में प्राकृतिक रूप में उगता है। भारत वर्ष में ये पौधे 200 से 1400 मीटर तक की ऊँचाई वाले स्थानों में प्रायः सड़क या रास्ते के किनारे, बंजर व खुली बलुई भूमि में तथा नदी, नालों के आस-पास पाये जाते हैं। यह पौधा लगभग 1.5 मीटर ऊँचा, झाड़ी दार तथा कभी - कभार छोटा वृक्ष के बराबर ऊँचा भी हो जाता है। इसकी छाल हलके सलेटी रंग की तथा पत्तियाँ त्रि-पत्रीय या पंच-पत्रीय, लम्बी, हरी, चिकनी तथा नीचे से सफेद होती है। इसके फूल उभयलिंगी तथा नीले रंग के होते हैं, जिनमें परागण मुख्यतः कीड़े-मकोड़ों द्वारा होता है। इस पौधे को हिन्दी में सम्भालू, निसीन्दा व निर्गुण्डी; बंगाली में निसीन्दा, समालू; उड़िया में बैगुना, बैगुन्डिया व हिरगुण्डी; पंजाबी में बान्ना, मारवाल, शवरी, गढवाली में शिवालू; गुजराती में नागोड़ा, नागोल; मराठी में निगुड़ी; तेलगु में बावीली तेल्लाबावीटी; तमिल में निरकुन्डी, वेलाई नाकोची, वेनमोची; असमिया में पसुतिया, अग्गला चीता; संस्कृत में सम्भालू तथा अंग्रेजी में चाइनीस चास्ते ट्री कहते है।

भारतीय चिकित्सा पद्धति में प्रयुक्त होने वाले औषधीय पौधों में यह एक बहुत ही प्रमुख औषधीय पौधा है। वैसे तो इस पौधे के सभी भाग (पत्र, फूल, फल, बीज, मूल व छाल)किसी न किसी औषधि के रूप में प्रयोग किए जाते है किन्तु इसकी पत्तियों व जड़ों को औषधि के क्षेत्र में मुख्य रूप से प्रयोग किया जाता है। हमारे देश में इस पौधे का उपयोग विभिन्न स्थलों में विभिन्न जन समुदाय व जन-जातियों द्वारा पारम्परिक रूप में अनेक प्रकार से किया जाता रहा है जिनका विस्तृत विवरण इनके उपयोगी भागों को क्रमबद्ध कर इस लेख में प्रस्तुत करने का प्रयास निम्नवत किया जा रहा हैं :-

इसकी पत्तियों को उबालकर उस पानी से नहाने से महिलाओं में प्रसव के बाद होने वाला 'सूतिका' तथा 'वात रोग' ठीक हो जाता हैं। जुकाम, बुखार में जब सिर में भारीपन तथा सुनने में तकलीफ होती है तो इसकी पत्तियों को काली मिर्च के साथ उबालकर काढ़ा बनाकर पिलाते हैं। इसके क्वाथ का भाप लेने से बुखार, टाइफाइड, जुकाम, मोच तथा गठिया रोग ठीक हो जाते हैं। पत्तियों को उबालकर बचे पानी को संक्रमण रोधी की तरह तथा इससे गरारे करने से दांतो में संक्रमण तथा मसूड़ों की सूजन में लाभ होता है।

इसकी पत्तियों के रस को नासूर व पुराने घाव पर लगाने से न सिर्फ मवाद निकल जाता है बल्कि उस पर पड़े कीड़े भी मर जाते हैं। इसके रस को तेल के साथ लगाने से एंठन व गाँठ वाले घाव भी ठीक हो जाते हैं। पत्तियों को सरसों के तेल में पकाकर उस तेल को कान में डालने से सुनने की शक्ति ठीक हो जाती है। पत्तियों के रस को गुदा के घाव पर लगाने से घाव ठीक हो जाते है। इसके रस को शहद के साथ सेवन करने से पाचन संबंधित रोग ठीक हो जातें हैं। इसकी पत्तियों का रस स्त्रियों में गर्भ निरोधक की तरह कार्य करता है अतः इसका प्रयोग (Oral contraceptive) की तरह किया जाता है। पत्तियों के रस को गर्भवती महिला को पिलाने से कम दिन का गर्भपात हो जाता है। इसके रस को खाली पेट 10 दिन तक लेने से बवासीर रोग ठीक हो जाता हैं। मछली तलने के बाद बचे घी के साथ इसकी पत्तियों के रस को फोड़े फुन्सियों, के

उपचार तथा कैन्सर रोधक के रूप में भी प्रयोग किया जाता हैं। इसकी खुशबूदार पत्तियों को टॉनिक तथा कृमि नाशक की तरह प्रयुक्त किया जाता है। सूजन व अफरा रोग के उपचार में इसकी पत्तियों को भाँग (Cannabis sativa) की पत्तियों तथा आकाश बेल (Cuscuta reflexa) के साथ पीसकर शरीर पर लेप लगाते हैं। इसकी पत्तियों को अत्यधिक धूप में सिर में रखने से लू नहीं लगती है तथा पत्ती का रस माथे पर लगाने से सिर दर्द ठीक हो जाता है। इसकी पत्तियों को कंटेली (Salanum surattense) तथा बेल (Aegle marmelos) की पत्तियों के साथ उबालकर तैयार हुए लाल रंग के पानी से नहाने से छोटी माता (Small pox) के उपचार में लाभ पहुँचाता हैं। इसकी पत्तियों से मूर्छित व सुन्न करने की औषधि (Tranquilizer) भी तैयार की जाती है। सरसों के तेल में मछली तलने के बाद बचे तेल में पत्तियों के रस को मिलाकर सर में लगाने से गंजापन व रूसी (Dandruff) का उपाचार किया जाता है। पत्तियों के रस से तैयार मलहम को बालों को सुन्दर व मजबूत बनाने कें प्रयुक्त करते हैं।

पत्तियों को सुखाकर सिगरेट की तरह पीने से सिरदर्द व जुकाम ठीक हो जाता है। पत्तियों के चूर्ण को पानी के साथ लेने से पेट का थुलथुलापन (तोंद) कम हो जाती है। इस चूर्ण को पानी के साथ देने से बार-बार पेशाब आने तथा बच्चों द्वारा रात्रि में बिस्तर में पेशाब करने की बीमारी का उपचार हो जाता हैं। शरीर के किसी भी भाग में हुए घाव पर पत्तियों का चूर्ण छिड़क देने से घाव ठीक हो जाता है। इसकी पत्तियों से भरी तकिया का उपयोग करने मात्र से सिर दर्द तथा नाक की हड्डी बढ़ने का रोग ठीक हो जाता है।

इसकी पत्तियों मे कीट नाशक गुण विद्यमान होने के कारण अनाज के भण्डार में कीड़ों को भगाने व मारने के लिए रखा जाता है। सूखी पत्तियों को एक कपड़े में बाँधकर गर्म कपड़ों के बक्से में रखने से गर्म कपड़ो पर कीड़े नहीं लगते है। सुखे पत्तों को धूप के साथ जलाकर मच्छर भगाये जाते हैं। पत्तियों को चारपाई के नीचे बिछाने मात्र से खटमल भाग जाते हैं तथा सूजाक रोग से ग्रसित रोगी के शरीर पर पत्तियों को फैलाने मात्र से वह ठीक हो जाता हैं। पत्तियों की गर्म सेक से गठिया (सन्धिवात) तथा अण्डकोष के रोग (Eksira, Orchitis व Epidydamitis) ठीक हो जाते हैं। इसकी पत्तियों में मुख्य रूप से निशिनडाइन ($C_{15}H_{21}ON$) तथा हाइड्रोकोटाइलिन ($C_{22}H_{33}O_8N$) नामक सक्रीय तत्व पाये जाते हैं। इसकी हरी टहनियों को धान के खेत में बीच - बीच बें रोपने तथा उनसे झाड़न करने से नुकसान दायक कीट-पतंग या तो भाग जाते हैं या मर जाते हैं। इसकी कोमल, पतली, 2 इंच लम्बी टहनी को छीलकर रात भर जनेन्द्री में रखने मात्र से कम समय का गर्भ गिर जाता है। टहनी से दातुन करने से मुँह की बदबू खत्म हो जाती हैं तथा इसके अर्क को जीवाणु रोधक के रूप में भी प्रयोग करते है। नई कोमल टहनियों को प्याज, लहसुन तथा इन्द्र जौ (Holarrhena pubescense) के बीज के साथ पीसकर तैयार की गयी गोलियों को पेट दर्द के उपचार में दिया जाता हैं। इस पौधे के नीले फूलों को जिगर की बिमारी, बुखार तथा अतिसार के उपचार में प्रयोग करते हैं। इसके फलों को सिरदर्द, सर्दी-जुकाम तथा आँखों से पानी बहने के उपचार में प्रयुक्त करते है। सूखे फलों को कृमिनाशक के रूप में भी दिया जाता हैं। इसके जड़ के पीले रंग के चूर्ण को बुखार, अजीर्ण, गठिया, वात, अतिसार, अर्श के उपचार तथा टानिक, मूत्र वर्धक व बलगम रोधक के रूप में प्रयोग किया जाता है। बवासीर के उपचार में जड़ को भात (चावल) के साथ पीसकर खाया जाता है तथा दाद पर जड़ को पीसकर लगाने से ठीक हो जाता है। कहा जाता है कि इसके सौ वर्ष पुराने पेड़ की जड़ में एक गाँठ बनती है, इस गाँठ को जलाकर सुरमा तैयार कर उसे आँखों में लगाने से मोतिया बिन्द (cataract) ठीक हो जाता है। पौधे की जड़ पर उगने वाले परजीवी (Alectra parasitica var. chitrakutensis) के कन्द से कुष्ट रोग का उपचार किया जाता है। पौधे की छाल को उबालकर चाय की तरह गर्म पिलाने से मलेरिया रोग ठीक हो जाता है।

औषधीय गुणों के अतिरिक्त इसके बीजों को उबालकर या पीसकर आटे के रूप में अकाल के समय में खाया जाता हैं। इसके बीजों के खूब धोने के बाद कभी-कभी काली मिर्च की तरह मसाले के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। जाड़ो के मौसम में इसकी पत्तियों से चाय बनाकर पी जाती है। इसकी पतली लम्बी टहनियों से टोकरियाँ बनाने का कार्य आज भी अेनक आदिवासी क्षेत्रों में देखा जाता है। पौधे को जलाकर बने राख से कपड़े धोने तथा उसकी लकड़ी को रगड़कर आग पैदा करने का वर्णन भी साहित्य में मिलता है। इसकी ताजी पत्तियों का वाष्प आसवन विधि द्वारा 0.04 से 0.07 प्रतिशत तक पीले हरे रंग का तेल निकाला जा सकता है।

उपरोक्त के अतिरिक्त इस पौधे को जानवरों द्वारा नहीं खाये जाने के कारण इसे सड़क के किनारे, खेतों के किनारे तथा खेतों की मेढ़ों में झाड़ी के रूप में लगाया जा सकता है। इसकी जड़ों में मूल चूषक पाये जाने के कारण इन्हें भू-क्षरण वाले स्थानों में रोपकर भूमि के कटाव को भी रोका जा सकता है। घनी पत्तियों व क्षुप नुमा आकार के कारण ये पौधे तूफान को रोकने में भी सक्षम होते है, अतः इस बहुपयोगी पौधे को बीज या मूल चूषक के अतिरिक्त तनों की कटिंग को बृद्धिकारक से उपचारित कर नये पौधे तैयार करना चाहिए तथा इन पौधों को केन्द्र व राज्य सरकार के उपक्रमों के माध्यम से हमारे देश के विभिन्न भागों में प्रसारण की समुचित व्यवस्था करानी चाहिए। हमें इसके सीमित उपयोग के साथ-साथ इसके संरक्षण, संवर्धन, प्रसारण तथा कृषि करण की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। अन्यथा इसके निरन्तर व अवैज्ञानिक दोहन के कारण इस पौधे को भी संकटग्रस्त पौधों की सूची कें शामिल होने से रोकना बहुत कठिन हो जाएगा।

———————

पेड़ लगाये हर इन्सान।
माँ वसुधा देगी वरदान।।

आओ मिलकर वृक्ष लगाएँ।
उपवन सा जीवन महकाएँ।।

प्रकृति की नैसर्गिक सुषमा को बचाना है।
जीवन को आनन्दमय व खुशहाल बनाना है।।

अपर सुबनसिरी के तागिन जनजाति का पारम्परिक वनस्पतिक ज्ञान

कुमार अम्बरीष
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर

ग्राम तामाचुंग चुंग के समीप वहती अपर सुबनसिरी नदी।
(सबट्रापिकल, एवर ग्रीन फॅरेस्ट)

भारतवर्ष का पूर्वोत्तर प्रदेश ''अरुणाचल'' मंगोलियन मूल की जनजातियों की गृहभूमि के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ पर 25 प्रमुख जनजातियाँ एवं उनकी उपजातियाँ निवास करती हैं। इनका जनजीवन परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से यहाँ पाये जाने वाले वन एवं वनस्पतियों पर निर्भर है इसलिये अपनी विभिन्न पारम्परिक एवं विविधताओं से परिपूर्ण यह अद्वितीय पर्वतीय प्रदेश, आदिकाल से ही वनस्पतिज्ञों, वैज्ञानिकों एवं मानव शास्त्रियों के लिये शोध का विषय रहा है। प्रदेश के उत्तर-पूर्व में तिब्बत (चीन) से सटा अपर सुबनसिरी जिला भी ऐसी ही विलक्षण विविधताओं का द्योतक एकमात्र ऐसा जिला है जहाँ पर ''तागिन''जनजाति वास करती है। तागिन, मुख्य रूप से दापोरिजो, तालिहा, सियुम नाचो, लिमिकिंग एवं टॉकसिंग क्षेत्रो में वास करते हैं। ऐसा माना जाता है कि ये लोग उन्नीसवी सदी में तिब्बत (चीन) के पेनजी ग्रामसे टॉडेग क्षेत्र में हुए एवं टाकसिंग से दापोरिजो तक फैल गये। टॉडेग क्षेत्र से विस्थापितों के नाम पर ही इस जनजाति का नाम ''तागिन'' के रूप में प्रचलित हुआ है अब जिनकी जनसंख्या लगभग 8,000 है।

बाँस से बना मुर्गी पालने हेतु टोकरा (ग्राम ओरक)

''तागिनों'' के पूर्वज शिकारी प्रवृति के लोग थे जो कि जंगलों में तीर कमान, दाव आदि से शिकार करना पंसद करते थे। आज भी इसके स्पष्ट प्रमाण बस्तियों में मिलते हैं। शिकार के बाद लोग जानवरों के सिर एवं सीगों को रसोइ घर में सजा कर रखते हैं। लेकिन साथ ही धार्मिक भी हैं जो ''सी-दोनी'' धर्म (सी–धरती एवं दोनी–सूर्य) के अनुगामी हैं। इनके पुजारी को ये तागिन भाषा मे ''नीबस'' कहते हैं जो सभी धार्मिक

दापोरिजो में एक स्थानीय तागिन युवा फाइकस नरवोसा की पत्तिया, शादी में खाना खिलाने हेतु पत्तल वनाने के लिये ले जाता हुआ

अनुष्ठानो एवं क्रियाकलापों को विधिवत करवाते हैं। इनकी भाषा ''तागिन'' केवल अरूणाचल के इसी भाग में बोली व समझी जाती है। ''सीदोनी'' इनका मुख्य त्योहार है जिसे सर्दियों में यह जनजाति पूरे हर्षोल्लास के साथ मनाती है। इस दिन पुरूष विशेष लाल पोषाक के साथ सिर पर जंगली बिल्ली के छाल से निर्मित टोपी पहनते हैं एवं बच्चे व महिलायें बाँस से बनाये गये सुन्दर पुष्प सिर पर लगाती हैं। इस अवसर पर ये लोग अपनी जाति की रक्षा हेतु ''मिथुन'' (एक अर्धपालतू जानवर) का बलिदान देते है। इनका घर बाँस, टोको पाम एवं अन्य काष्ठों से बना होता है जिससे ये इन्हे भूकंप-रोधी बनाते हैं। इस घर को ये ''चाँग घर'' के नाम से पुकारते हैं।

पूर्व में उग्र प्रवृत्ति के ये लोग केवल भीतरी क्षेत्रो में ही निवास करते थे एवं भारत व चीन (तिब्बत) के घने जंगलों में कबीलों के रूप में रहते थे। सर्वप्रथम 1911 में इनको एक सर्वेक्षण दल ने खोजा था फिर 1951 में अलॉग जिले के सहायक राजनीतिक अधिकारी श्री के. टी. सुमा के 165 लोगों के सर्वेक्षण दल ने इस क्षेत्र का दौरा किया जिस पर ''तागिन'' लोगों के झुंड ने घात लगाकर हमला कर दिया और दुर्धटना वश दल के 47 लोगों की मृत्यु हो गयी। इस दुर्घटना को ''आचिंग मोरी'' दुर्घटना के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ के बूढ़े लोग (ग्राम ओरक) आज भी यह बात खेद के साथ बतलाते हैं।

आज समय ने करवट बदली है एवं भारत व अरूणाचल सरकार के अथक प्रयासों एवं प्रोत्साहन से आज यह जनजाति समाज की मुख्य धारा में शामिल हो रही है एवं विकास की ओर अग्रसर हैं। कभी जंगली कंद, मूल, फूल, फल एवं शिकार पर गुजर बसर करने वाले ये लोग अब झूम खेती (मक्का, मरूआ, धान आदि) एवं मिथुन, सूअर, बत्तख, मुर्गी पालन पर निर्भर करते हैं फिर भी अपने दैनिक जीवन की अन्य आवश्यकताओं जैसे जलावन की लकड़ी, चारा, औषधियों, जंगली सब्जियों एवं काष्ठ आदि हेतु यहाँ पाये जाने वाली वन एवं वनस्पतियों पर ही निर्भर करते हैं। विगत कुछ वर्षो के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला है कि ये लोग अपने पारम्परिक तौर तरीकों से जिन वनस्पतियों का उपयोग उपरोक्त वर्णित आवश्यकताओं हेतु करते हैं वह पारम्परिक ज्ञान लिपिबद्ध नहीं होने के कारण विलुप्तता के कगार पर है। कुछ ऐसे रोचक एवं उपयोगी पौधों की जानकारी तालिका में प्रस्तुत की जा रही हैं जिसमे यह ज्ञान अन्य आवश्यक शोधो में प्रयोग हेतु संरक्षित हो सके और इस दिशा में और अधिक कार्य किया जा सके।

तालिका - 1 पौधों के पारम्परिक उपयोग

सं	वैज्ञानिक नाम	स्थानीय नाम	पौधे का भाग	उपयोग
1	अब्रोमा अगस्था	याटुकि	छाल व जड़	जाँडिस एवं खूनी आँव में
2	अकेशिया पिन्नाटा	–	छाल व पत्तियां	मछली मारने के लिये
3	ऐल्टीन्जिया एक्सैल्सा	जुतली	तना	काष्ठ एवं औजार बनाने हेतु
4	ऐल्पीनिया नाइग्रा	तोरा	प्रकन्द पत्तियाँ	सब्जी के रूप में
5	एल्बीजिया ल्यूसिडा	लांगगिर एसिंग	छाल व पत्तियाँ	त्वचा रोगों के उपचार में
6	ऐजिरेटम् कॉनीजाइड्स	पिसिंग	पत्तियाँ	जले कटे एवं खुजली के उपचार में
7	ऐकोनीटम नगारम	–	प्रकन्द	तीरों हेतु जहर
8	अर्टीमिसिया नीलगिरिका	हितर	पत्तियां	शारीरिक दर्द के उपचार में एवं सब्जी के रूप में
9	एमेरैंथस स्पाईनोसस	तिर्ताम	पत्तियां, तना	सब्जी, कब्ज के उपचार हेतु
10	बैम्बुसा टुल्डा	जेटी मिरटेंगा	सम्पूर्ण पौधा	धार्मिक अनुष्ठानों में
11	बैम्बूसा वल्गैरिस	बरीलल	नया तना	सब्जी के रूप में
12	बिगोनिया पामेटा	चुरभु	तना व पत्ती	डिहाइड्रेशन में
13	कीसोकीटोन पेनीकुलाटस	–	फल	मछली मारने एवं बंदर भगाने में
14	कैलेमस ग्रेसिलिस	–	तना	रोटी के लिये आटा तैयार करने हेतु
15	क्लोरेंथस ऑफिसिनैलिस	–	पत्तियाँ	बुखार एवं कमजोरी में
16	सेन्टेला ऐसिएटिका	–	,,	उल्टी एवं दस्त के उपचार में
17	सिसलपिनिया कुकुलाटा	तरबू	,,	पूजा एवं मछली मारने में
18	कार्लेमानिया	–	तना व पत्ती	खाँसी, एवं जुकाम में
19	काप्टिस तीता	मिशमी तीता	प्रकन्द	खाँसी, बुखार एवं अतिसार के उपचार में
20	कॉस्टस् स्पीशियोसस् (कोन.)	याचीन	प्रकन्द	साँप काटने में।
21	सारको कैलेमस पल्चेरिमा	साग	पत्तियां	सब्जी के रूप में
22	सारको पाइरामिस नेपालेंसिस	–	,,	पेट दर्द में।
23	डायसकोरिया बल्वीफेरा	अंगिन	कन्द, वल्कस	सब्जी के रूप में एवं पेचिश के उपचार में
24	डिप्लेजियम एसकुलेन्टम	ढ़ेकिया	पत्तिया, तना	सब्जी के रूप में एवं कब्ज दूर करने में
25	डैन्ड्रोकैलेमस हैम्लिटोनाई	काकी पाचा	तना	घर बनाने में व भंडार सामग्री बनाने में
26	डैन्ड्रोकैलेमस स्ट्रिकट्स	मलकारा बाँस	तना	घर बनाने में व भंडार सामग्री बनाने में
27	दुआबंगा ग्रेंडीफ्लोरा	खोकन, रामडाला	तना व टहनी	काष्ठ एवं जलावन की लकड़ी
28	इल्युसाइन कोराकैना	मरूआ	बीज	''अपंग'' (मदिरा) बनाने में
29	फाइकस आरीकुलाटा	–	पत्ती, फल	पत्तिया चारा व फल खाने के रूप में
30	फाईकस नर्बोसा	–	पत्तियाँ	पत्तल बनाने के लिए
31	हैडियोटिस स्कैन्डेंस	रिकिन	पत्तियाँ	आँख, दाँत व कान दर्द में
32	होटुनिया कॉर्डेटा	लता	सम्पूर्ण पौधा	अनिद्रा में कच्चा व उबाल कर खाते है।
33	इंडोफेबिलिया खासियानम	मजिंग	जड़, तना	अतिसार व पेचिश के उपचार में
34	लिविस्टोनीया जेंकिनसियाना	टोको पाम	पत्तियाँ	चांगघरकी छत बनाने में
35	लिट्सिया क्यूबेवा	तायर	फल	पेट के कीड़े मारने में
36	मोमोर्डिका कोचिन चाइनेंसिस	भात करेला	फल	सब्जी के रूप में
37	म्यूसावेल्यूटिना	कोल	फल, तना	अतिसार, पेट के कीड़ो से छुटकारा पाने में

38	मैलोटस फिलिप्पेंसिस	तुपिन	पत्तियां	सर्दी एवं जुकाम बुखार में
39	भुसैडा राक्सबर्घी	–	पत्तियां	सब्जी के रूप में एवं दाँत दर्द के उपचार में
40	असबेकिया न्यूटेन्स	सिकरू	बीज	खाद्य के रूप में
41	पैडिरिया फाटिडा	बासी लता	पत्ती	उदर विकार में
42	पाइपर पेडिसिलासम वाल	–	पत्ती	सब्जी के रूप में
43	पाइपर नेपालेंसिस अलिग	–	पत्तियाँ, फल	सब्जी तथा अन्य रूप में खाने में
44	पिक्रेराइजा स्क्रोफुलेरीफ्लोरा	रैंके	प्रकन्द, जड़	बुखार व वदन दर्दके उपचार में
45	पालीगोनम ओरिएंटेलिस्	–	पत्ती	सब्जी व चटनी के रूप में
46	रूबस इप्लिटीकस	जिली	फल	खाने में
47	रूबस इंसिगनिस	केचे	फल	खाने में
48	रस चाइनोंसिस	–	फल, बीज	पेट दर्द के उपचार में
49	सोलेनम एसियानम	जिरका	जड़, तना	सिर दर्द एवं बुखार के उपचार में
50	सोलेनम टॉरवम	तितला	फल	सब्जी के रूप में
51	स्पाईलैंथस एक्युमिनाटा	–	सम्पूर्ण पौधा	कब्ज में सब्जी के रूप में खाते है
52	सौरूआ पंडुआना	–	फल	खाने में
53	स्टर्कुलिया हैम्लिटोनी	ताकलम	बीज	भूनकर खाते है।
54	स्वेर्सिया चिरैता	चिरैता	तना, जड़	शक्तिवर्धक टॉनिक बनाने में
55	थायसोलिना मैक्सिमा	–	सम्पूर्ण तना	झाड़ू बनाने में
56	ट्रिविसिया पामेटा	तकलु	पत्ती, फल	मछली मारने का जहर बनाने में
57	यूरेना लोबाटा	बोरियाल	पत्ती	खुजली एवं फोड़े फुंसी हेतु पेस्ट बना कर घाव पर लगाने में
58	जैंथो जाइलम आर्मेटम	–	तना, छाल	दाँत दर्द व पेट की अफरन में।

———————

पेड़ जमीं के देवता, लक्ष्मी के हैं दूत ।
बेटा-बेटी की तरह इनसे करो सलूक ।।

बंगाल में चौदह शाक, उनके उपयोग व घरेलू उपचार

आंखी साऊ व छवि घड़ा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

प्राचीन काल से ही मानव जीवन में पौधों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आवश्यक खादय, औषधि, आश्रय के अतिरिक्त पौधे सामाजिक व धार्मिक समारोह व उत्सवों में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यह प्रथा वैदिक समय में प्रारम्भ हुआ और इसे आर्यो की संस्कृति मानी जाती है। आमतौर पर भारतीय लोग शाक की भुजिया बनाकर या पकाकर सेवन करते है। परन्तु विश्व के अन्य जातियों के लोग भी इसे बड़े चाव से खाते हैं। ये पत्तीनुमा शाक विभिन्न रंगों के होते है व इन्हें पकाने का ढंग भी अलग अलग स्थान पर अलग अलग है। ये शाक पोषक तत्व से परिपूर्ण, विटामिन युक्त व विभिन्न रोगों के प्रतिषेधक होते हैं। यह एक रोचक तथ्य है कि प्रत्येक शाक का अपना पृथक पोषक गुण व रोग निरामय क्षमता होती है।

पश्चिम बंगाल में कार्तिक मास में भूत चतुर्दशी के अवसर पर चौदह शाक खाने का प्रचलन है। ये शाक धार्मिक रीति-रिवाज के अनुसार रोगों के उपचार के लिए भी सेवन किये जाते रहें हैं। इन चौदह शाकों के स्थानीय व वनस्पतिक नाम उनके पोषक गुण व घरेलू उपचार इत्यादि का वर्णन इस लेख में किया गया है जो इस प्रकार है–

1. एल्टरनेथ्रेरा सेसिलिस (एमरेन्थेसी) : 'सांचे या सालिचा'

स्तन दूध की मात्रा को बढ़ाने के लिए इसके पत्तों का सेवन किया जाता है। इसके ताजे रस से आंख की बीमारी का उपचार किया जाता है। रतौंधी और पेट की बीमारी में काली मिर्च और इसके पत्ते के रस का पेस्ट बनाकर उपचार हेतु उपयोग किया जा सकता है। इसमें प्रोटिन (5%) व लोहा 16.7 मि. ग्राम होता है।

2. एमरनथस स्पाइनोसस (एमरेन्थेसी) 'कांटा नोटे'

कब्ज और मूत्र संबंधी समस्या में पौधे को पकाकर सेवन किया जा सकता है। भूख न लगने पर इसके पत्तों का सेवन किया जा सकता है। नाखूनों में संक्रमण होने पर इसकी जड़ों का पेस्ट बनाकर लेप किया जाता है। रक्त-पेचिस होने पर इसकी जड़ो का पेस्ट 10 ग्राम व 3 काली मिर्च के मिश्रण को सात दिन लगातार सेवन करने से उक्त रोग से मुक्ति मिल सकती है। बवासीर में रक्त के बहाव को रोकने के लिए इसके पत्तों का उपयोग किया जा सकता है। इसकी जड़ के 2.5 से. मी. टुकड़े को किंचित गुड़ के साथ मिश्रण प्रतिदिन चबाने से ल्यूकोरिया की बीमारी से निदान मिलता है। औरतों में माहवार के दौरान रक्त के अधिक बहाव को रोकने के लिए इसके रस को दिन में दो बार सेवन करने से लाभ मिलता है।

इसमें प्राटिन (3.0%), वसा (3.0%) कार्बोहाइड्रेट (8.1%) खनिज पदार्थ (3.6%), कैलसियम (0.8%) फास्फोरस (0.05%) लोहा (22.9 मि.ग्रा. / 100 ग्राम) की मात्रा में उपलब्ध है।

3. एस्टाराकांथा लोंगीफोलिया (एकेन्थेसी) 'कूले खाड़ा, कोकिलाकसा, कुलपी'

इसकी जड़, पत्तियों एवं बीज का सेवन बहुमूत्रता में अत्यन्त लाभकारी है। एक चम्मच शहद के साथ एक कप कूले खांड़ा का रस सेवन करने से पीलिया, रक्त की कमी, कमजोरी व मुख में दुर्गन्ध जैसी बीमारी ठीक हो जाती है। शौथ व मूत्र संक्रमण होने पर इसके पौधों का उपयोग किया जाता है। प्रसव के बाद इसके बीज का पेस्ट सेवन के लिए दिया जाता है।

4. बक्कोपा मोनिएरी (स्क्रेफुलेरिएसी) 'ब्राह्मी'

मिरगी व पागलपन की बिमारियों में औषधि के रूप में सेवन किया जाता है। ब्राह्मी शाक का एक चम्मच रस आधे कप दूध के साथ मिलाकर एक सप्ताह तक प्रतिदिन सेवन करने से स्मृति ह्रास का पुनः वापिस लाने में सफलता मिलती है। बच्चों को सर्दी-जुकाम एवं कफ होने पर गर्म दूध के साथ इसके पत्तों के रस की 25-30 बूँद सेवन करने से राहत मिलती है। शुक्राणु दुर्बलता में इसका रस लाभकारी हैं।

5. बासेला एल्बा (बेसीलेसी) 'सादा पुंई, लाल पुंई व पुंई'

इसके पत्ते पुलटिस के रूप में काम आते है। इसका रस बच्चों के कब्ज दूर करने में उपयोगी है। यह गर्भवती महिलाओं के लिए उपयोगी है। इस पौधे में कैल्शियम की मात्रा 0.15% लोहा 1.4 मि. ग्रा./ 100 मि.ग्राम, विटामिन ए 3250 आई. यू. विटामिन बी 40 आई. यू. व विटामिन बी 210 आई. यू. / 100 ग्राम

6. बोरहैविया डिफयूजा (निक्टाजिनेसी) : 'पुनर्नवा, पुर्नी, पुर्निमा'

इस पौधे के ताजे जड़ो में एल्केलॉयड-परनोवाइन (0.04%) व सूखे पौधों में पोटैशियम नाइट्रेट (0.52%) होता है। इस पौधें की जड़ रस युक्त होती है। इस पौधे का रस प्रदर रोग, मूत्र संबंधी समस्या के उपचार में उपयोगी है इसके पौधे की ताजी जड़ो का पेस्ट बनाकर लगाने से फोंड़ा ठीक हो जाता है। पत्तों का चार चम्मच रस जल, के साथ प्रतिदिन सेवन करने से मधुमेह रोग में लाभकारी है। मलेरिया व बेरी-बेरी रोगों में इसका चार चम्मच रस दुध के साथ सेवन रोग निदान में सहायक है। इसके अतिरिक्त गठिया रोग में लाभकारी तथा प्रसव में शीध्रता लाने के लिए महिलाएं इसके रस का सेवन करती हैं।

7. सेंटेला एसियाटिका (एपिएसी) 'थानकुनी पार्नी'

इसके पौधे चर्मरोग और कुष्ट रोग के निदान में उपयोगी हैं इसकी पत्तियां रस व जड़ का चूर्ण बच्चों के उदर संबधी समस्याओं में लाभकारी है। इसके पत्तों का रस अमीबीय अतिसार, दस्त व सिफलिश जैसे रोगों के निदान में लाभकारी है।

8. चीनोपोडियम, स्थानीय नाम : 'बेथुआ' (चीनोपोडिएसी)

कृमि होने पर सुबह खाली पेट इसका रस (2-3 चम्मच) सेवन करना लाभप्रद है। बुखार के उपचार में तिल के तेल से इसकी कोमल हरी पत्तियों को खाने से लाभ मिलता है। थैलेसेमिया व मलेरिया होने पर इसका रस सेवन किया जाता है। शुष्क पत्तों का चूर्ण दही के साथ सेवन करने से दस्त ठीक हो जाता है।

9. कॉकसिनिया ग्रेंडिस, (कुकुरबिटेसी) स्थानीय नाम : 'तेलाकुचा'

इसके पत्तों का रस रक्त एवं मूत्र में सामान्य से अधिक शर्करा (मधुमेह) चर्म रोग, खाँसी जुकाम व नजला के लिए लाभकारी है। इसके हरे फल मसूड़े का अल्सर रोकने में अधिक प्रभावकारी है। जल के सम्पर्क में अधिक रहने से खासकर वर्षा के समय पैरों में खाज होने से इसके कच्चे फल का पेस्ट गर्म करके लगाने से खाज तथा नाखूनों के कोने में संक्रमण होने पर भी ठीक हो जाता है।

इसमें आर्द्रता (93.0%), प्रोटीन (1.2%) वसा (0.1%) फाइबर (1.6%) कार्बोहाइड्रेट (1.5%) खनिज पदार्थ (0.5%) कैल्शियम (0.04%) फास्फोरस (0.03%) लोहा (4 मि.ग्रा./ 100 ग्रा.) विटामिन ए 260 आई. यू. / 100 ग्राम व विटामिन सी 28 मि. ग्रा. / 100 ग्राम।

10. कोलोकेसिया एसक्यूलेंटा (एरेसी) स्थानीय नाम : 'कचु, कचालु, तारो'

इसका रस रक्त रोधक, उत्तेजक व नसों के टूट-फूट को रोकता है। यह कर्ण रोग को दूर करने में लाभकारी है। इसके रस के सेवन से बालों का झड़ना रूक सकता है। बिच्छू या बर्रे डंक मारने से इसके रस का उपयोग किया जाता है। बवासीर और यकृत में रक्त जमाव जैसे रोग में इसका सेवन लाभकारी है। इसके रस में प्राणदायी शक्ति है। इसके पत्ते और पपड़ी विटामिन ए, बी और सी के अच्छे स्रोत है। शरीर में पीड़ा होने पर इसका रस उपचार हेतु उपयोग में लाया जा सकता है।

11. आइपोमिया एक्वेटिका (कॉनवॉलवुलेसी) 'कलमी'

अफीम या आरसेनिक की विषाक्तता होने पर उल्टी करवा कर जहर को निकालने के लिए इस पौधे के रस को उपयोग में लाया जाता है। यह कब्ज नाशक व शरीर को शीतल रखती है। यह कमजोरी व घबराहट को दूर करता है। यह माताओं में दूध बढ़ाता है। यह चेचक का प्रतिरोधक है। इसमें प्रोटीन (2.1%) वसा (0.2%) कार्बोहाइड्रेट (2.9%) कैल्शियम (0.13%) व फास्फोरस (0.07%) होता है।

12 मार्सीलिया माइन्यूटा (मार्सिलिएसी) 'शुशुनीशाक'

अनिद्रा, शुक्रणु संबंधी रोग और मिरगी होने पर इसके पौधे का सेवन किया जाता है। मधुमेह होने पर इसके पौधे का रस मेथी के साथ सेवन करना लाभकारी है। इसके पत्ते खनिज और कैरोटिन के अच्छे स्रोत है। इसमें प्रोटीन (2.9%) कार्बोहाइड्रेट (4.3%) खनिज पदार्थ (2.1%) कैल्शियम (0.11%) फास्फोरस (0.05%) पाया जाता है। इसके अतिरिक्त विटामिन ए. बी. सी, इ, निकोटिनक, एसिड व रिबोफ्लोबन भी विद्यमान है।

13. मोरिंगा ओलिफेरा (मोरिंगेसी) 'साजन'

रतौंधी और आंख की रोशनी की मात्रा में कमी की स्थिति में इसके पत्तों का रस उपयोग में लाया जाता है। थैलेसीमिया रोग में इसके पत्ते और फूल की तरी खाने के लिए रोगी को दी जाती है। इसके हरे फल को चूने के जल के साथ मिलाकर सेवन करने से मिरगी जाती रहती है। कान के मवाद को यह ठीक कर देता है। लकवा होने पर इसके छाल को उबालकर सरसो के तेल के साथ मिलाकर लगाने से लाभ मिलता है। यह विटामिन ए और सी का अच्छा स्रोत है। इसके अतिरिक्त इसमें प्रोटिन, कार्बोहाईड्रेट, वसा, कैल्शियम फास्फोरस भी विद्यमान है।

14. रैफनस सैटाइवस (बैसिकेसी) 'मूला या मूली'

जिसके पत्ते विटामिन ए का अच्छा स्त्रोत हैं। खनिज, लोहा, कैल्शियम और एस्कॉर्बिक एसिड भी बहुतायत में मिलता है।कर्ण पीड़ा व कान में जल जाने से इसका रस कान में डाला जाता है। दस्त होने पर दो तीन दिन तक दिन में चार बार इसके जड़ का रस दिए जाने पर दस्त ठीक हो जाता है। दाद होने पर इसका पेस्ट लगाया जा सकता है।

पत्ते शाकों का सेवन दिन प्रतिदिन कम होता जा रहा है क्योंकि अधिकतर लोगों को अभी तक इसके पोषक और औषधीय गुण के बारे में पता नहीं है। दूसरे शहरी क्षेत्रों में सभी शाक सहजता से नहीं मिल पाते। वर्तमान समय में तेज रफ्तार के जीवन में हमारे खान-पान की आदत भी बदल गई है। ये शाक कम मूल्य में अच्छे पोषक गुण वाले विटामिन से भरपूर खाद्य हैं। अपने भोजन में इसका भरपूर उपयोग कर स्वस्थ्य रहा जा सकता है।

———————

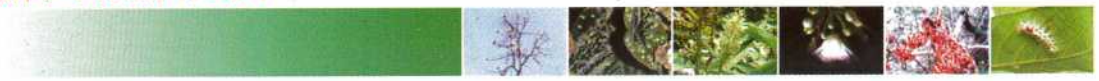

असम के अल्प ज्ञात दस शाकीय स्वजात साग पौधे

राजीव गोगोई एवं रनजित दैमारी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलाँग

उत्तर पूर्वी भारत को गुरुजैव विविधता क्षेत्र का तप्तस्थल माना जाता है। भारत के इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की दुर्लभ वनस्पतियाँ और प्राणी पाये जाते हैं। पूर्वोत्तर भारत के विभिन्न भागों में आर्थिक और वाणिज्यिक सामर्थ के पौधे बहुतायत से पाये जाते हैं। भारत की कुल वनस्पति जातियों में से लगभग 50 वनस्पतियाँ इस क्षेत्र में ही पाई जाती हैं। विभिन्न प्रकार के औषधीय पौधे और ऑर्किड भारत के इस भाग में बहुलता से मिलते हैं। पूर्वोत्तर राज्य के जंगलों में बहुत प्रकार की लुप्तप्राय और संकटग्रस्त जाति की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं।

पूर्वोत्तर राज्य विशेषकर असम में प्रचूर मात्रा में जैविक विविधता पाई जाती है। असम में विभिन्न जनजातियाँ और समुदाय अपनी संस्कृति और परंपरा के साथ रहते हैं। यहाँ के आदि वासियों का वन या पेड़-पौधों के साथ एक घनिष्ट सम्बन्ध है। विभिन्न जातियों के पौधों के बेहतरी के लिये सकारात्मक रूप से कैसे उपयोग करना चाहिये, ये लोग उसे अच्छी तरह से जानते हैं।

सम के बहुत से स्थानों में लोग छोटी-मोटी बीमारीयों या महामारी में रोगों के उपचार के लिये पेड़-पौधों का उपयोग करते हैं। बहुत से स्थानों में लोग अभी भी पेड़-पौधों को घर आदि के निर्माण का साधन मानते हैं। उसी तरह विभिन्न समुदाय वन में पाये जाने वाले स्वजात पौधों को अपने भोजन के रूप में उपयोग करते हैं। विभिन्न प्रकार के परंपरागत फल, कंद, मुलायम स्तंभ, पत्तियों, आदि का प्रयोग खाद्य के रूप में करते हैं। असम में बहुत से अच्छे स्वजात साग की जातियाँ पायी जाती हैं जिसे विभिन्न समुदाय के लोग उपयोग करते हैं।

प्रस्तुत लेख में असम के कम ज्ञात दस स्वजात साग की जातियों का उपयोग एवं विवरण दिया गया है।

1. **एल्पीनिया नाइग्रा (Alpinia nigra)** 'तरागाजलि'

यह बड़ा प्रकन्दवाला शाक जो 3 मीटर तक लंबी होती है। इसका पत्तेदार स्तंभ चिकनी सफेद-सा पीला आच्छद से ढका होता है। इसका फूल छोटा हल्का गुलाबी-सफेद होता है। संपुट गोलीय और बीज काला होता है।

पारिस्थितिकी–यह पौधा जलीय और अर्धजलीय अवस्था में बंजर जमीन में पाया जाता है।

उपयोग– इसकी नवीन स्तंभ का साग बनाकर खाया जाता है। नवीन स्तंभ को आग में भूनके आलू या सूखी मछली और लाल मिर्च के साथ मिश्रित किया जाता है। यह कार्बो गार, देउरी, मिसि, बड़ और आहम समुदाय के लोगों का लोकप्रिय साग है।

2. **कैलेमस टेनुइस (Calamus tenuis)** 'पानी बेट'

यह पौधा गुच्छ छरहरा आरोही जाति का है। इसका स्तंभ पत्ते की आवरण से ढका होता है और पूरी तरह कंटक से भरा होता है। इसके पुष्पक्रम नर और मादा भाग में विभक्त किये गये हैं। फल गोल पीले रंग के होते हैं।

पारिस्थितिकी–यह अर्धजलीय अवस्था में नदी या दलदल के समीप पाया जाता है।

उपयोग – इसके नवीन स्तंभ को साग बना कर खाया जाता है। इसके पर्णच्छद को स्तंभ से निकाल के मज्जा

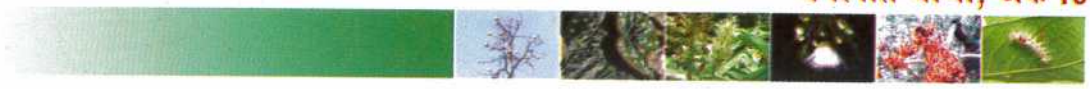

अंश का उपयोग करते है जो थोड़ा कटु स्वाद का होता है। यह साग ऊपरी असम के समुदाय के बीच लोकप्रिय है और उसे आँत-कृमि के उपचार के लिए उपयोग किया जाता है।

3. **क्लेरोडेंड्रम कोलेबुकियानम (Clerodendrum colebrookianum)** 'नाफाफु'

यह एक बड़ी भड़कीली झाड़ी है जिसके पत्ते सामान्यतः अंडाकार रूप के गहरे हरे रंग होते हैं। इसके फूल सफेद और फल हरा-सा होता है। यह पौधा सुगंधित है।

पारिस्थितिकी – यह पौधा सड़क के किनारे और वन के किनारों में पाया जाता है।

उपयोग–इसकी पत्तों का साग बनाकर खाया जाता है और यह सभी जनजाति और समुदाय के बीच लोकप्रिय है। इसके सेवन से उच्च रक्तचाप कम होता है।

4. **एनहाइड्रा फ्लकटुएंस** (Enhydra fluctuans) 'हेलसि'

यह शयान कच्छ शाक जिसका पर्ण विपरीत होता है। इसका फूल पीला-सा, सफेद और पुष्पक्रम कक्षीय और अंतस्थ दोनों भाग में है।

पारिस्थितिकी–यह पौधा कच्छ भू भाग में पायी जाती है।

उपयोग–इसके नवीन स्तंभ का साग बनाके खाया जाता है। यह पौधा अर्श रोग में उपयोगी है।

5. **फाइकस ग्लोमेराटा** (Ficus glomerata) 'डिमरू'।

यह बड़ा पेड़ है जिसकी पत्तियाँ अण्डाकार, दीर्घवृत्तीय, दीर्घायत या भालाकार होती हैं। एक वृन्त से 4-7 तक हेस्पिरोडियम होते हैं।

पारिस्थितिकी–यह उष्ण कटिबन्धीय वन में पाया जाता है।

उपयोग – इसकी नवीन पत्तियों को मुख्यतः शुअर मांस के साथ खाया जाता है क्योंकि यह जीवाणु नाशक है साथ ही मांस के वसा घटक को कम करते हैं।

6. **होमालोमीना एरोमेटिका (Homalomena aromatica)** 'गनकसु'

यह सुगंधित प्रकन्दवाला शाक है व जड़ बहुत होती हैं। इसकी पत्तियां मूलज स्तंभ छोटा पर्णवृन्त 100 से. मी. तक लम्बा होता है। पृथुपर्ण हरा-पीला रंग का होता है।

पारिस्थितिकी–यह आर्द्र उष्ण कटिबन्धीय वन पहाड़ी ढाल और नदी के किनारे पाया जाता है।

उपयोग – इसके पर्णवृन्त और नये पत्तों को निचले असम के विभिन्न समूदाय साग बनाकर खाते हैं।

7. **सार्कोक्लेमिस पलचेरिमा** (Sarcochlamys pulcherrima) 'मासाकि'।

यह बड़ा झाड़ीदार पौधा है जिसका छाल काली भूरे रंग की होती है। पत्तिया भालाकार, लम्बाग्र और सीमित आधार की होती हैं। पर्ण का निचला पृष्ठ सफेद रंग का होता है। स्पाइक 3-6 से. मी. तक लम्बी होती है।

पारिस्थितिकी–यह वनों या नदी के किनारे पाई जाता है।

उपयोग–इसके नवीन स्तंभ को असम के विभिन्न समूदाय जैसे देउरी, मिसिं और आहम लोग शूकर मांस के साथ सब्जी बनाकर खाते हैं। इसके पर्ण और नवीन स्तंभ खाने से सुअर मांस में रहने वाले रसौली मर जाते हैं।

8. **स्माइलेक्स परफोलिआटा (Smilax perfoliata)** 'टिकनी बरुवा'।

यह आरोही झाड़ी है जिसमें तीक्ष्णवर्धक और एकक पुष्पछत्रक होते हैं। फूल बहुत से और फल सरस होते हैं।

पारिस्थितिकी–यह उष्ण कटिबंधीय वनों में पाया जाता है।

उपयोग – इसके नवीन स्तंभ को असम के विभिन्न जनजाति के लोग साग बनाकर खाते हैं।

9. **टेट्रास्टिग्मा थोमसौनिआनम (Tetrastigma thomsonianum)** 'नलतेङा'।

यह तीन पत्तियाँ वाला शाकीय आरोही है। इसकी प्रतान साधारण, पत्तियां विपरीत छरहरी, फूल हरे रंग और फल सरस होता है।

पारिस्थितिकी–यह पौधा आर्द्र या बलुआ–घसियाले भूभाग में पाई जाती है।

उपयोग– इसके नवीन स्तंभ और पत्तियों को मछली के साथ सब्जी बनाकर खाया जाता है। यह पाकविधि ऊपरी असम के उत्तरी लखिमपुर और घेमाजि जिले में लोकप्रिय है।

10. **लासिया स्पाइनोसा (Losia spinosa)** 'सेंमरा'

यह प्रबल तीक्ष्णवर्धक शाक है जिसके स्तंभ प्रकन्दवाला होती है। पर्णवृन्त लम्बे, भालाकार, बाणाकार या दोर्णपिच्छाकार होता है। स्थूलमंजरी हल्का, गुलाबी फूल से भरा हुआ घना होता है।

पारिस्थितिकी –यह वनों के नदीतट, दलदल और कच्छ भूभाग में अर्धजलीय अवस्था में पाई जाती है।

उपयोग – इसकी नयी पत्तियों को ऊपरी असम में सब्जी बनाकर खाया जाती है। इसका उपयोग स्त्री के मूत्र तथा प्रजनन रोग में लाभकारी है।

प्राचीन काल से असम के लोग बहुत से पौधों का संवर्धन एवं उपयोग किया करते थे और आज भी बहुत से कम ज्ञात पौधे भोजन हेतु असम समुदायों के मध्य लोकप्रिय हैं। ऐसे कम ज्ञात शाकीय स्वजात पौधें की अच्छी तरह से वाणिज्यिक तौर पर उत्पादन करने से स्थानीय गरीब लोगों को आर्थिक लाभ भी मिल सकता है।

———————

बने प्रकृति का हम संबल।
इसमें है हम सबका मंगल।।

प्रायोगिक वनस्पति उद्यान, शिलांग

विपिन कुमार सिन्हा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी परिमंडल, का प्रायोगिक वनस्पति उद्यान , शिलांग से 22 कि. मी. की दूरी (शिलांग – गौहाटी रोड) पर बड़ापानी क्षेत्र में सन् 1966 में स्थापित किया गया। इस उद्यान का कुल क्षेत्रफल लगभग 25 एकड़ है। उद्यान की स्थापना का मुख्य उद्देश्य उत्तरपूर्वी क्षेत्र के दुर्लभ , रोचक, लुप्तप्राय एवं संकटग्रस्त पौधों को संरक्षण प्रदान करना एवं शोध कार्य हेतु पौधों को उपलब्ध कराना है। इस उद्यान में लगभग 646 देशी विदेशी पर्णांग, अनावृतबीजी सहित 100 से भी अधिक जातियों के औषधीय पौधे, आर्थिक महत्व तथा शोभनीय पौधे एवं अर्किड की लगभग 140 प्रजातियाँ संग्रहित हैं। इस उद्यान में ऊतक संर्वधन प्रयोगशाला भी है। जहाँ पौध प्रसारण का कार्य भी चल रहा है। यहाँ पाये जाने वाले पौधों को उनकी उपयोगिता के आधार पर कई भागों में बाटा गया है जैसे :

1. प्राचीन पौधे : एसकुलस असामिका, मैग्नोलिया ग्रैन्डीफलोरा, पाडोकार्पस नोरिफोलियस टैक्सस बालिचियाना एक्सबुकलैन्डिया ग्रैन्डिफलोरा, आदि है।

2. दुर्लभ, रोचक, संकटग्रस्त एवं लुप्तप्राय पौधे : एकेंथेफिप्यिम सिल्हेटेन्स, डिप्टेरिस वालिचाई, नीटम निमॉन, नेपेन्थिस खासियाना, साइथिया जाइगेन्सिया, पैफियोपेडिलम इनसिग्नीं, फायस टैकंरविल्ली, वनिला पिलीफेरा, ऐसर, लेविगेटम, एक्यूलेरिया मलाकेन्सिस, अरेका नागेन्सिस, मेलोकाना बेसिफेरा, बैम्बूसा बांलकुआ, बैम्बूसा न्यूटेन्स, बैम्बूसा पैलिडा, डेन्ड्रोकैलेमस हेमिलटोनि साइजोस्टेकियम पालिर्माफम, काप्टिस तिता, हेडीकियम वंश की जातियां, मेसुआ फेरिया आदि है।

3. औषधीय पौधे : सर्पगन्धा, ब्राह्मी, मदार, एकोनिटम, लाइकोपोडियम, टैक्सस, सिम्बोपोगान, मैन्था, दालचीनी, गालथेरियां, एक्लेरिया, एकोरस केलेमस, काप्टिस तीता आदि है।

4. बाँस की प्रजातियां : मेलोकाना बेसिफेरा, बैम्बूसा टुल्डा, बैम्बूसा बालकूआ, बैम्बूसा खासियाना, बैम्बूसा न्यूटेन्स, बैम्बूसा पैलिडा, बैम्बूसा वुलगेरिस, डेन्ड्रोकैलेमस हेमिलटोनि, डेन्ड्रोकैलेमस हुकेरियाना, साइजोस्टेकियम पालिर्माफम, आदि है।

5. उपयोगी पौधे : इस उद्यान में आर्थिक रूप से उपयोगी पौधे जैसे – केला, नीबू, पान, बाँस एवं अमोमम की अनेको जंगली जातियों के साथ ही सजावटी पुष्पों की जंगली प्रजातियों को भी लगाया गया है। जिनमें प्रमुख है : आर्किडस, प्रिमुला, हैडिकियम, आइरिस, एस्टर, मैग्नोलिया, टक्का, जस्मीनम, अगापिटस, ग्लोरिओसा, कमेलिया हड्रैन्जिया, आदि है।

उद्यान की वनस्पतिक विविधता :

उद्यान में पाये जाने वाले पौधों को कुल, वंश व जातियों के अनुसार तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका - १ :

समूह	कुल की संख्या	वंश की संख्या	जातियों की संख्या
पर्णांग	18	28	36
जिम्नोस्पर्म	9	12	15
आवृतबीजी (i) एकबीजपत्री	20	117	273

(ii) द्विबीजपत्री	96	231	322
कुल योग	143	388	646

अन्त में हम कह सकते है कि यह उद्यान पादप जातियों के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर रहा है। देश के पूर्वोत्तर राज्यों में पाये जाने वाले पौधों के संरक्षण एवं संवर्धन में इस उद्यान को केन्द्रीय भूमिका के रूप में मान्यता प्राप्त हैं। यह उद्यान आज वैज्ञानिकों छात्रों व पादप प्रेमियों के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। यहाँ पर लोगों को पौधों की जानकारी के साथ-साथ उनके संरक्षण की भी जानकारी दी जाती है साथ ही शोध कार्य हेतु पौधों को भी उपलब्ध कराया जाता है।

———————

वृक्ष लगाने का करो विचार।
वृक्ष हैं जीवन का आधार।।

वनस्पति, प्राणी, सब एक समान।
उठो, जागो, करो इनका सम्मान।।

नंगी धरती करे पुकार।
वृक्ष लगाकर करो शृंगार।।

वन ककड़ी : कैंसर चिकित्सा का प्राकृतिक विकल्प

एम. के. पाठक व मानस भौमिक
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

वन ककड़ी या पोडोफाइलम की दो जातियाँ भारत में पाई जाती हैं : पोडोफाइल अरिन्टीयाकाउंले एवं पोडोफाइलम हेक्सेंड्रम।

औषधि के रूप में पोडोफाइलम हेक्सेंड्रम का प्रयोग हमारे यहाँ सदियों से होता आ रहा है। परम्परागत चिकित्सा में इसका उपयोग क्ई रोगों के निदान हेतु किया जाता है। इस जाति की कुछ ऐसी विशिष्टताएँ है जिसने वनस्पतिज्ञों एवं औषधि निर्माता कम्पनियों को आकृष्ट किया है। इसकी बाह्य संरचना (पत्तियाँ फूल आदि) में प्रचुर विविधता पाई जाती है। इस पौधे के वैज्ञानिक नाम के 28 से अधिक उपनाम (पर्याय) हैं। इसके कन्द में एक प्रकार का तत्व (कम्पाउंड) **पोडोफाइलोटॉक्सिन** पाया जाता है। यह तत्व कोशिकाघाती एवं कैंसर प्रतिरोधी है। औषधि निर्माता एवं अनुसन्धान कर्ता इसे कैंसर प्रतिरोधी औषधियों का सस्ता एवं सुलभ विकल्प मानते हैं।

यह जाति कभी वनों में प्रचुरता से उपलब्ध थी। अति दोहन के कारण अब यह दुर्लभ हो गई है। इसलिए इसके अंन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को नियंत्रित करने हेतु इसे तथा इसके उत्पाद को CITES की द्वितीय श्रेणी तथा निर्यात की नकारात्मक सूची में रखा गया है।

हमारे देश में उपलब्ध पोडोफाइलम वंश की दूसरी जाति है पोडोफाइलम औरेंटियोकाउले! यह जाति पोडोफाइलम हेक्सेंड्रम से भी दुर्लभ है। आकार प्रकार एवं रसायनिक तत्वों में समानता के अतिरिक्त लक्षणों के आधार पर इन्हें पृथक किया जा सकता है।

पोडोफाइलम हेक्सेंड्रम भारतके हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, उत्तरांचल, सिक्किम एवं अरूणाचल प्रदेश तथा विदेशों में अफगानिस्तान, भूटान, चीन और नेपाल से ज्ञात है। जब कि पोडोफाइलम ओरेंटियोकाउले भारत के अतिरिक्त भूटान एवं चीन में पाया जाता है। विगत दिनों में यह जाति अरूणाचल प्रदेश के अलावे सिक्किम से भी ज्ञात थी। पर पिछले लगभग 100 वर्षो में इसे यहाँ से नहीं खोजा जा सका है। अरूणाचल प्रदेश में भी यह जाति प्रकृतवास के लगातार नष्ट होने के कारण संकटापन्न है।

दोनों जातियाँ विशिष्ट प्रकार के प्रकृतवास में होती है। पोडोफाइलम हेक्सेड्रम अपेक्षाकृत अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में पाई जाती है जहाँ शंकुधारी वनों की बहुलता होती है, मिट्टी में ह्युमस एवं नमी की अधिकता होती है। हिमानी एवं उपहिमानी वन भी इनके प्रिय प्रकृतवास हैं। इसके विपरीत पोडोफाइलम ओरेंटियोकाउले उपरोक्त वनों के अतिरिक्त उपोष्ण कटिबंधीय (sub-tropical) वनों में भी पायी जाती है। घने वनों के तल से लेकर बाँस की झाड़ियों, छोटे छोटे झरनों एवं नालों के किनारे उगते हैं।

पोडोफाइलम हेक्सेंड्रम के कन्द की बाजार में बहुत मांग है। अति दुर्लभ होने एवं सरकारी प्रतिबंध के कारण प्रकृति से इसका लाभप्रद दोहन संभव नहीं रहा । अब लोग इसकी खेती के तरफ उद्यत हुए हैं। उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश एवं जम्मू-कश्मीर में छिटफुट खेती हो रही है। उच्च तकनीफ एवं सही मार्गदर्शन के अभाव में अधिक लोग इसकी खेती नहीं कर रहे हैं। व्यावसायिक आकार के कन्द तैयार होने में 6-8 वर्षो का समय लगता है। यही कारण है कि आर्थिक रूप से एक बेहतर विकल्प होने के बावजूद लोग इसकी खेती को नहीं अपना पाते हैं। अभी भी इसकी मांग एवं पूर्ति में एक बड़ा अन्तर बना हुआ है।

पोडोफाइलम ऑरेंटियोकाउले अरूणाचल प्रदेश के सुदूरवर्ती इलाकों में उगती है। यहाँ इसके औषधीय प्रयोग एवं खेती की कोई चर्चा नहीं है। लोग इस पौधे को पहचानते जरूर हैं। हमने दिबांग घाटी में सर्वेक्षण के दौरान पाया कि लोग मवेशियों को इसकी पत्तियाँ एवं तने खिलाने से परहेज करतें हैं। कारण पूछने पर पता चला कि इससे मवेशियों की मौत हो गई है। दिबांग घाटी में इस पौधे को ''आउकापो''(Aukapo) के स्थानीय नाम से जाना जाता है।

दोनों जातियों के ऊपर व्यापक अनुसन्धान किए गये हैं। इन अध्ययनों से पता चलता है कि दोनो जातियों में प्रायः समान औषधीय गुण विद्यमान हैं। इनमें पाये जाने वाले औषधोपयोगी कुछ तत्वों के नाम इस प्रकार है : डिहाइड्रोपोडोफाइलोटाक्सिन, डाइफाइलिन, डाइसोएंथाक्विनोन, डाइसोस्माजोल, आइसोपिक्रोपोडोफाइलोन, फाइसियोन, पिक्रोपोडोफाइलिन, पिक्रोपोडोफाइलोन, पोडोफाइलोटारिकन, डीआक्सीपोडोफाइलोटाक्सिन, डीआक्सीफाइलोटाक्सिन, डाइमिथाइल पोडोफाइलोटोक्सोन, अल्फा एवं बीटा पेल्टेटिन तथा डाइमिथाइलडीआक्सी पोडोफाइलोटाक्सिन आदि।

पोडोफाइलम ऑरेंटियोकाउले के जनजातियों द्वारा औषधीय उपयोग कम ही ज्ञात है। पोडोफाइलम हेक्सेंड्रम के अनेक औषधीय गुणों की उन्हें जानकारी है। पश्चिमी हिमालय की पहाड़ी जनजातियाँ इसके कन्दमूल का प्रयोग जौंडिस, अपच, हिपाटाइटिस, बुखार, सिफलिस्, ड्राप्सी, स्क्रोफुला एवं वात जनित रोगों के उपचार में करती है।

इसके कन्द एवं मूल में पाये जाने वाले पोडोफाइलोटाक्सिन एवं अल्फा तथा बीटा पेल्टेटिन पदार्थ में कैंसर प्रतिरोधी गुण पाये गये हैं। इसमें पाये जाने वाले बेरबेरीन नामक अल्काल्वायड से मलेरिया का उपचार किया जाता है। पोडोफाइलिन नामक रसायन एलर्जेनिक है। इसमें ट्यूमर प्रतिरोधी गुण पाये, जाते हैं। कृत्रिम तरीकों से तैयार किया गया पोडोफाइलोटाक्सिन प्राकृतिक पोडोफाइलोटाक्सिनसे कई गुणा मंहगा पड़ता है। इस पौधे में बहुत बड़ी व्यवसायिक एवं आर्थिक सम्भावना निहित हैं। आवश्यकता है इस दिशा में कदम उठाने की।

पोडोफाइलम में पाये जाने वाले कई औषधीय पदार्थ अत्यन्त जहरीले हैं। इसके कन्द मूल से स्वयं उपचार नहीं करने की सलाह दी जाती है।

पोडोफाइलम हेक्सेंड्रम के कन्द मूल का स्थानीय लोग व्यापार, जीविकोपार्जन एवं उपचार के लिए उपयोग करते हैं। इनकी मांग् निरन्तर बढ़ने से अति दोहन के कारण ये दुर्लभ हो गये हैं। प्राकृतिक रूप से बीजों के अंकुरण एवं अंकुर से पौधे बनने के निम्न दर के चलते बीज से वंश वृद्धि बहुत कम होती है। पौधों की संख्या कन्द से बढ़ाई जाती है। अत्याधिक दोहन के कारण प्राकृतवासों में इनकी संख्या इस तरह घट रही है कि लुप्त होने की स्थिति उत्पन्न हो गई है।

पोडोफाइलम ऑरेटियोकाउले के प्राकृतिक वासों का भी तेजी से ह्रास हो रहा है। यह पहले से ही दुर्लभ श्रेणी में है। वनों की अंधाधुंध कटाई एवं झूम खेती के लिए उन्हें जलाये जाने के कारण इसका प्राकृतवास नष्ट हो रहा है। यह जाति निश्चित रूप से पोडोफाइलम हैक्सेंड्रम का विकल्प है। भविष्य में इसके औषधीय गुणों के लिए इसका दोहन संभव है। इसे बचाने का हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए। वनों में इसका दोहन बन्द होने से इसकी वंश वृद्धि होगी। जनजातियों को इसकी खेती की अत्याधुनिक तकनीक उपलब्ध कराने से वनों पर उनकी निर्भरता कम होगी। इस जाति की दुर्लभता एवं बहुमूल्य औषधीय गुणों से सम्पन्न होने के कारण इस जाति को व्यापार की ''नकारात्मक सूची'' में शामिल किया जाना चाहिए। प्राकृवासों से इसके दोहन पर भी पूर्ण पाबंदी लगानी चाहिए।

———————

भारत में बिगोनिएसी कुल – एक अवलोकन

एमाद उद्दीन
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

बिगोनिएसी कुल में 2 वंश तथा लगभग 1400 जातियां पायी जाती हैं। इन में से सिर्फ एक ही जाति हिलाब्रेन्डिया वंश के अन्तर्गत है जो अमरीका की हावाई द्वीप समूह में सीमित क्षेत्री (endemic) है। बाकी सारी जातियां बिगोनिया वंश की है जो विश्व की उष्ण कटिबंधीय तथा उपोष्ण जंगलो में बिखरी हुई है। बिगोनिया के लिये आर्द्र पर्यावरण उपयुक्त है जहां वर्षा भी अधिक होती हो। लगभग 1400-1600 जातियाँ समेत बिगोनिया विश्व के 5 सबसे बृहत वंशो में से है। इन मे से बहुत सी जातियां ऐसी है जो खुश्क मौसम में कंद तथा प्रकंद के द्वारा जीवित रहती हैं और वर्षा ऋतु में पुनःजीवित हो उठती हैं। रंगारंग

बिगोनिया आबोरेनसिस (*Begonia aborensis* Dunn.)

बिगोनिया आबोरेनसिस (Begonia aborensis Dunn.) **फूल**

पत्तियों तथा खूबसूरत फूलो के साथ बिगोनिया की अनेक जातियाँ अपने अन्दर बागवानी सामर्थ्य रखती है। इसी कारण से अन्तर्द्वार व बाह्य उद्यानों में बिगोनिया की अनेक जातियाँ और संकर भेद (hybrid varieties) लगायी जाती है। औषधीय गुणों में भी बिगोनिया की अनेक जातियां उल्लेखनीय है। पेट की बीमारी और बुखार में आदिवासी लोग बिगोनिया की अनेक जातियां दवा बनाकर उपयोग करते है। गरमी के मौसम में जलशुष्कता से बचाव के लिये भी बिगोनिया कच्चा खाया जाता है। जोंक से दूर रहने के लिये बिगोनिया की पत्तियों तथा डंठल को पीस कर बदन मे मलना फलदायक हैं। बिगोनिया की चटनी खट्टी और स्वादिष्ट होती है जो पेट के लिये भी फायदा देती है।

विश्व के बहुत से जाने-माने वनस्पतिज्ञों ने इस वंश पर व्यापक अध्ययन किया हैं जिनमें डी कन्डोले (1859, 1864), वारबर्ग (1894) अर्मस्कार (1925) बार्कली (1972, 1974) स्मिथ (1986) डूरेनबोस (1998) इत्यादि उल्लेखनीय है। डूरेनबोस एवं अन्य (1998) ने बिगोनिया की अववंशीय वर्गीकरण (infra-generic classification) में 63 खण्ड तथा 1376 जातियों को मान्यता दी है। उत्तर्वर्ती समय में तीन खंड करीब 200 जातियां इस वंश में जोड़ी गयी हैं।

बिगोनिया थमसोनी (*Begonia thomsonii* A.DC.)

भारत में सी. बी. क्लार्क (1879) ने सबसे पहले व्यापक रूपसे बिगोनिएसी कुल का अध्ययन किया था। उन्होंने तत्कालीन ब्रिटिश – भारतीय साम्राज्य से 64 जातियों का उल्लेख किया था और उनको 6 खंडो में वर्गीकृत किया था। फ्लोरा आफ ब्रिटिश इंडिया के रूप में प्रकाशित महत्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक अध्ययन के बाद भारत में इस कुल पर बहुत ही कम काम किया गया। इन में एस. टी. डान (1920) आइ. एच. बार्किल (1924), के. पी. बिस्वास (1966), कुमार एवं भटटाचार्या (1992), अम्बरीश एवं एमाद उद्दीन (2006) एमाद उद्दीन एवं एस. फुकन (2007); एमाद उद्दीन एवं हिनयुटा (2007) इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

बिगोनिया थमसोनी (*Begonia thomsonii* A.DC.)

फ्लोरा आफ इंडिया (Flora of India) परियोजना के अन्तर्गत बिगोनिएसी कुल की पुनरीक्षण (Revision of family Begoniaceae) के दौरान लेखक ने इस कुल की 57 जातियां तलाश की है जो अब तक वर्तमान भारत के राजनैतिक परिसर से अभिलिखित है। आधुनिक सर्वजन स्वीकृत धारणा के अनुसार इन जातियों को 7 खंडों में वर्गीकृत किया जा सकता है। भारत की बिगोनिया जातियाँ पूर्वी एवं पश्चिमी हिमालय, पूर्वोत्तर राज्य समूह, पूर्व एवं पश्चिम घाट पर्वत और अण्डमान - निकोबार द्वीपसमूह में बिखरी हुयी हैं। इनमें पूर्वी हिमालय तथा पूर्वोत्तर राज्य समूह में सबसे अधिक संख्या में बिगोनिया जातियाँ पायी जाती हैं। अरूणाचल प्रदेश से सबसे ज्यादा 21 जातियाँ लिपिबद्ध है जब कि सिक्किम, दार्जिलिंग, मिजोरम, और मणिपुर में दस या उससे अधिक जातियाँ पायी जाती हैं। पूर्व तथा पश्चिम घाट में मिली बिगोनिया में से महाराष्ट्र, केरल और तामिलनाडु से 5 या उससे अधिक जातियां उल्लिखित है। आन्ध्र प्रदेश में सिर्फ एक ही जाति मिलती हैं। पश्चिमी हिमालय में उत्तरांचल से दो तथा जम्मू एवं कश्मीर और हिमाचल प्रदेश से एक - एक ही जाति प्राप्त हैं। अण्डमान-निकोबार द्वीपसमूह से अब तक एक ही जाति *बिगोनिया आण्डामेनसिस* (Begonia andamensis Parish) दर्ज हैं।

बिगोनिया जेन्थीना (*Begonia xanthina* Hook.)

बिगोनिया जेन्थीना (*Begonia xanthina* Hook.)

किये हैं। भारत की इन जातियों में से 18 को रेड डाटा बुक (1990) के अन्तर्गत किया गया है जिनमें से बिगोनिया ब्रेविकोलिस (Begonia brevicaulis) और बिगोनिया फृक्सोफाइला (Begonia phrixophylla को IUCN से प्रकाशित रेड लिस्ट (1999) के अनुसार विलुप्त होने का संदेह जताया गया है। पर्यावरण प्रदूषण, प्रकृतवास का नाश आदि कारणों से बिगोनिया तथा अनेक वानस्पतिक सम्पदा दिन बदिन विलुप्त होती जा रही है। इनकी सुरक्षा की हर कोशिश हमारी जिम्मेदारी है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण पूर्वी परिमंडल, शिलांग जनन द्रव्य संरक्षण (Germplasm Conservation) कार्यक्रम के

बिगोनिया ट्राइकोकार्पा (*Begonia trichocarpa* Dalziel)

भारत में पायी जाने वाली 57 जातियों में से 23 जातियां सीमित क्षेत्री हैं जिन में से 10 से अधिक तो संकटग्रस्त (endangered) हैं। अधिक संकटग्रस्त (critically endangered) 5 जातियां ऐसी हैं जो प्ररूप संग्रह (type collection) के बाद किसी को मिली ही नहीं। हाल में कुमार आदि (2003) ने केवल बिगोनिया एलिसिया (Begonia aliciae)) तथा अम्बरीश एवं एमाद उद्दीन (2006) ने अरूणाचल प्रदेश से बिगोनिया टेसारिकार्पा (Begonia tessaricarpa) पुनर्प्राप्त

बिगोनिया मेगाप्टेरा (*Begonia megaptera* A.DC.)

अन्तर्गत पूर्वोत्तर भारत की अनेक दुर्लभ (rare) संकटग्रस्त (endangered) तथा सीमित क्षेत्री पौधों को प्रयोगिक वनस्पति उद्यान, बारापानी में संरक्षित किये हुये है। इनमें 25-30 जातियों की बिगोनिया भी शामिल है।

———————

मेघालय के पावन वन (सेक्रेड ग्रूव) : एक वैज्ञानिक अध्ययन

बिकारमा सिंह, बिपिन कुमार सिन्हा, विवेक नारायण सिंह एवं टी. एम. हिनयूटा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
शिलांग

लव लिंगडोह माक्लांग पावन वन का एक दृश्य

भारत के सुदूर पूर्वोतर में स्थित ''बादलों का घर'' कहा जाने वाला राज्य मेघालय 25°47' से 26°10' उत्तर अक्षांश तथा 89°45 से 92°47 पूर्व देशांतर में स्थित है। इस पर्वतीय क्षेत्र का कुल क्षेत्रफल 22,490 वर्ग किलोमीटर है। ऊँची-नीची पर्वत श्रृंखलाओं वाला यह प्रदेश अधिक वर्षा एवं आर्द्रता के कारण, उष्ण-आर्द्र कटिबंधीय वनों से ढका है, तथा अपने वनस्पतिक खजाने में अनेक सीमित क्षेत्रीय व संकटग्रस्त पौधों को समेट हुये है। इस पर्वत प्रदेश में तीन मुख्य जनजातियाँ : **गारो, खासी** व **जयंतिया** निवास करती है वन एवं जनजातियों का आपसी सामंजस्य इस प्रदेश में निराला है। एक ओर जहॉ ये जनजातियाँ अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इन वनों पर निर्भर रहतें हैं और कृषि कार्य हेतु झूम पद्धति को आज भी अपनाये हुये हैं, वहीं अपनी मान्यताओं व विश्वासोंके कारण जंगलों के काफी बड़े भू-भाग को **पावन वन** के रूप में संरक्षित कर रखा है, जो वन विभाग व जैव विविधता के संरक्षकों के लिये एक उदाहरण है।

क लव एडंग मवस्माई (चेरापूंजी) के पावन वन का एक दृश्य

पावन वन का भीतरी दृश्य और उससे निकलती जल की धारा

वन ही मेघालय जनजातियों का प्राकृतवास होने के कारण ये स्वयं को प्रकृति का अभिन्न अंग मानते हैं। खासी जनजातिय इन वनों को 'लव किंनटंग'

'लव लिंगडोह माक्फलांग' पावन वन से जुड़ी मोनोलिथ

('Law Kyntang), 'लव लिंगडोह' ('Law Lyngdoh) अथवा 'लव नियाम' ('Law Niam) का नाम देते है। वही जयंन्तिया निवासी 'ख्लव-उ-ब्लाइ' (Khloo-U-Blai) कहते है। गारो जनजातिय इसे 'आसंग कोसी' (Aseng Kosi) और 'बोल-वारंगनी-बियाप' (Bol-Warrangni-Biap) के नाम से जानते हैं। इनके समस्त क्रिया-कलाप, खानपान, मनोरंजन, धार्मिक विश्वास आदि में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इनका पूरा जीवन चक्र वनों के परितः ही घूमता है। धार्मिक विश्वास की बात की जाय तो इनके द्वारा संरक्षित वन (पावन वन) ही इनकी आस्था के केन्द्र हैं। इन वनों से जुड़ी अनेक कथायें किंवदंतियाँ इन जनजातियों में प्रचलित हैं। इन जनजातियों की मान्यतानुसार इन वनों में इनके पूर्वजों की आत्मायें निवास करती हैं, जिसे ये 'रिंगकिव-उ-बासा (Ryngkew-U-Basa) कहते हैं, तथा वनों की क्षति पहुँचाने से उन आत्माओं को कष्ट होगा ऐसा मान कर इन वनों को सदियों से सुरक्षा प्रदान करते आ रहे हैं।

पावन वन में नृत्य करती जैन्तिया जनजातिया

वनों की सुरक्षण व संरक्षा के प्रति इनकी पद्धति भी निराली ही है। गॉव के मुखिया जिसे ये अपनी भाषा में 'प्रीस्ट लिंगडोह' (खासी), ''डोलोय' (जयंतिया) और 'नोगमा' (गारो) कहते हैं, इन वनों के संरक्षक होते है, तथा वनों की सुरक्षा की पूरी जिम्मेदारी उन्हीं की होती है। मुखिया की अनुमति के बिना इन वनों में प्रवेश वर्जित है, अतः यदि किसी को वन में जाना हो तो वह मुखिया से पूर्वानुमति लेगा जो प्रवेश से पहले पूजा-अर्चना करेगा तथा स्वयं उसे लेकर प्रवेश करेगा। वन में पेड़-पौधों को नुक्सान पहुँचाना वर्जित है, परंतु वन मे ही किसी फल को खाना, वहीं फेंक देना वर्जित नहीं है। अच्छे कार्य

पावन वन में प्रवेश हेतु 'रिंगकिव–उ–बासा' की पूजा करता खासी लिंगडोह

पावन वन में नृत्य करती खासी जनजातियॉ

करने से पूर्व इन वनों में जाकर अपने पूर्वजों से आशीर्वाद लेना शुभ माना जाता है, परन्तु यदि किसी के मन में द्वेष हो या कोई वन से लकड़ी चोरी करे तो उसे इन आत्माओं का प्रकोप लगता हैं और उसकी गर्दन टेढ़ी हो जाती है। अपने इष्ट देव, 'रिंगकिव-उ-बासा' यानी पूर्वजों की आत्मा को प्रसन्न करने के लिये ये वर्ष में एक या दो बार एकत्रित हो कर वन में किसी एक पवित्र स्थान पर ढोल-बाजे के साथ पूजा एवं नृत्य करते हैं। कहीं-कहीं तो गाय, सुअर, बकरी व मुर्गी आदि को बलि देने का भी प्राविधान है। खासी जनजातियों का मानना है कि 'लव एडंग लेटरिंगकेव' नामक सेक्रेड ग्रूव में बास करने वाली पूर्वज की आत्माएँ आस-पास के गॉव में रहने वाले लोगों को 'उ-थ्लेंन (U-Thlen) नामक सॉप जो इस वन की गुफा में रहता है और मनुष्य का खून चूसता है, उससे रक्षा करती है और साथ ही साथ इन लोगों को प्रकृति के कुप्रभाव से भी बचाती है। ये वन ही इनके आराध्य हैं और उन्हें संरक्षित रखना इनकी पूजा का ध्येय।

हमारे अध्ययन के अनुसार मेघालय में अब तक पावन वनों की कुल संख्या 111 है, जिसमें से रिभोय में 03, जयंतिया हिल्स में 35, पूर्व खासी हिल्स में 38, पश्चिमी खासी हिल्स में 19, पूर्व गारो हिल्स में 08 एवं पश्चिमी गारो हिल्स में 08 पावन वन हैं। दक्षिणी गारो हिल्स से पावन वनों का कोई संदर्भ प्राप्त नहीं हुआ है। भिन्न-2 स्थानों पर इन पावन वनों का क्षेत्रफल भी भिन्न-2 है, जो 0.01 से लेकर 1,200 हेक्टेयर तक है। मेघालय के इन वनों का नाम व क्षेत्रफल तालिका-1 में दिया गया है।

तालिका–1

मेघालय के समस्त पावन वनों (Sacred Groves) तथा उनका क्षेत्रफल जिलेवार क्रम में निम्नवत् है –

क्र. सं.	पावन वन		क्षेत्रफल (हेक्टेअर)
	रिभोई जिला के पावन वन		
1.	उ लुम मावकेर पाइमप्डेम, उमसव नंगखाई	'U Lum Mawker Pahampdem, Umsaw Nongkhrai	900.0
2.	नंग लिंगडोह नंगखाह, उमसाव नंगखाई	Nong Lyngdoh Nongkhrah, Umsaw Nongkharai	90.0
3.	सोफेटब्लेग नंगखाई, उमसाव नंगखाई	Sophetbneng Nongkhrai, Umsaw Nongkhrai	90.0
	जयन्तियॉ हिल्स जिला के पावन वन		
4.	खलू ब्लाई लव, रलियंग	Khloo Blai law, Raliang	0.01
5.	पोह पूजा कोपाटी, रलियंग	Poh Puja Kopatti, Raliang	4.0

6.	पोह मोरंग, रलियंग	Poh Moorang, Raliang	20.0
7.	का पुन लिंगडोह, रलियंग	Ka Pun Lyngdoh, Raliang	15.0
8.	ख्लाव बाइरसन, रलियंग	Khlaw Byrsan, Raliang	50.0
9.	ख्लू ख्लिह रलियंग, रलियंग	Khloo Khlieh Raliang, Raliang	–
10.	ख्लू ब्लाई लिंगडोह रलियंग, रलियंग	Khloo Blai Lyngdoh Raliang, Raliang	–
11.	ख्लू पूजा, रलियंग	Khloo Puja, Raliang	–
12.	पोह लिंगडोह, शांगपुंग	Poh Lyngdoh, Shangpung	30.0
13.	लव किनटंग, शांगपुंग	Law Kyntang Shangpung	400.0
14.	ख्लु ब्लाई लिंगडोह शांगपुंग, शांगपुंग	Khloo Blai Lyngdoh Shangpung, Shangpung	–
15.	ख्लू ब्लाई बासन, शांगपुंग	Khloo Basan, Shangpung	–
16.	ख्लू ब्लाई डीन शीनरुम, रीमबाई	Khloo Blai Dien Shynrum, Rymbai	15.0
17.	ख्लु ब्लाई रीमबाई, रीमबाई	Khloo Blai Rymbai, Rymbai	–
18	ख्लू पैउ रम परथाई पनालियर, जोवाई	Khloo Paiu Ram Pyrthai Panaliar, Jowai	150.0
19.	ट्रिपाले जोवाई पनालियर जोवाई	Trepale Jowai Panaliar, Jowai	70.0
20.	ख्लू ब्लाई लिंगडोह जोवाई, जोवाई	Khloo Blai Lyngdoh	–
21.	मेलिकसोए, जोवाई	Molikso, Jowai	–
22.	खलू लिंगडोह खिमुसशियंग, जोवाई	Khloo Lyngdoh Khimmusiang, Jowai	15.0
23.	मोखैन, जोवाई	Mokhain, Jowai	45.0
24.	त्लु मुसनियंग, जोवाई	Tlu Musniang, Jowai	–
25.	ख्लिह मैन्रेम, जोवाई	Khleh Mynrem, Jowai	–
26.	ख्लू ब्लाई रैन्गाकव आईलंग, जोवाई	Khloo Blai Ryngkaw Ialong, Jowai	–
27.	ख्लू ब्लाई थ्लंग, जोवाई	Khloo Blai Thlong, Jowai	–
28.	ख्लू किनटंग डपेपाट मिंडिहाटी, सुतुंगा	Khloo Kyntang Depat Myndihati Sutnga	15.0
29.	लुम्टिनिआंग मोखैव सिंडाई, सुतुंगा	Lumtiniang Mokaiaw Syndai Sutnga	25.0
30.	लव आइलंग, सुतंगा	'Law Ialong, Sutnga	12.0
31.	ख्लू ब्लाई लिंगडोह नंगबाह, नंगबाह इलाका	Khloo Blai Lyngdoh Nongbah, Nongbah Elaka	–
32.	ख्लू ब्लाई लिंगडोह नंगज्नि	Khloo Blai Lyngodoh Nongjngi Nongjngi	–
33.	ख्लू ब्लाई अइअंगनियंग, नंगज्नि	Khloo Blai Poh Iongniang, Nongjngi	–
34.	ख्लू ब्लाई लिंगडोह नंगथैमाइ, नंगज्नि	Khloo Blai Lyngdoh Nongthymme Nongjngi	–
35.	ख्लू पूजा पोहियाव नारतियंग,नारतियंग	Khloo Puja Pohiaw Nartiang, Nartiang	–
36.	ख्लू ब्लाई लिंगडोह मैनसो, मैनसो	Khloo Blai Lyngdoh Mynso, Mynso	–
37.	ख्लू ब्लाई टामरेम, नंगटालन्ग	Khloo Blai Tamrem, Nongtalang	–
38.	ख्लू लिंगडोह नंगटालन्ग, नंगटालन्ग	Khloo Lyngdoh Nongtalang, Nontalang	–

पूर्वी खासी हिल्स जिला के पावन वन

39.	लव लिंगडोह, माक्फलांग	'Law Lyngdoh, Mawphlang	40.0
40.	लव लिंगडोह स्मिट, नंगक्रेम	'Law Lyngdoh Smit, Nongkrem	6.0
41.	लुम शाईलंग लाइट्कर, नंगक्रेम	'Lum Shyllong Laitkor, Nongkrem	7.0
42.	लव किनटंग ख्लेर्हशनंग, चेरापूंजी	'Law Kyntang Khleihshnong, Cherrapunji	50.0
43.	लव एडंग ख्लेईशनंग, चेरापूंजी	'Law Adong Khleihshnong, Cherrapunji	90.0
44.	ख्लव रम जाडोंग, मवस्माई	Khlaw Ram Jadong, Mawsmai	50.0
45.	लव ब्लीं बह, मवस्माई	'Law Blei Bah, Mawsmai	80.0
46.	मॅवलंग स्ईम, मवस्माई	Mawlong Syiem, Mawsmai	80.0
47.	पोम शान्डी, मवस्माई	Pom Shandy, Mawsmai	80.0
48.	का लव एडंग, मवस्माई	Ka 'Law Adong, Mawsmai	400.0
49.	लव सुइडनोह, लैट-रिंगिव	'Law Suidnoh, Lait-Ryngew	80.0
50.	लव उ नियांग, लैट-रिंगिव	'Law U Niang, Lait-Ryngew	10.0
51.	माडन जाडू लैट-रिंगिव	Madan Jadu, Lait-Ryngew	5.0
52.	लव अर-लियंग, लैट-रिंगिव	'Law Ar-Liang, Lait-Ryngew	25.0
53.	लुम डिंगिरी, खदार श्नांग	Lum Diengiri, Khadar Shnong	25.0
54.	माव्मंग, खदार श्नांग	Mawmang, Khadar Shnong	15.0
55.	वाखेम, खदार ब्लंग	Wakhem, Khadar Blang	10.0
56.	लव लिंग सोहरारिम	Law Lieng,Sohrarim	50.0
57.	लव मवसाप्टुर, सोहरारिम	'Law Mawsaptur, Sohrarim	50.0
58.	लव डेनमिव, सोहरारिम	'Law Dynmiew, Sohrarim	200.0
59.	लव नंगशिम, मवमिहथीड	'Law Nongshim, Mawmihthied	5.0
60.	म्वसावा मवम्लुह	Mawsawa, Mawmluh	50.0
61.	मवरेट, वाहलंग	Mawryot, Wahlong	40.0
62.	नियूंगडोह, वाहलंग	Niangdoh, Wahlong	30.0
63.	रिजाव, वाहलंग	Rijaw, Wahlong	35.0
64.	लव एडंग, लेटरिंगकेव	'Law Adong Laitryngkew	20.0
65.	लव किन्टंग, स्वेर	'Law Kyntang, Swer	12.0
66.	उम्टंग, उमवई	Umtong, Umwai	400.0
67.	डिंगकेन, उमवई	Diengkain, Umwai	400.0
68.	मवथोह, उमवई	Mawthoh, Umwai	600.0
69.	मव क्रगह, उमवई	Maw Kyrngah, Umwai	1200.0
70.	केन्संग, मवलंग	Kynsang, Mawlong	150.0
71.	उमथ्री, मवलंग	Umthri Mawlong	80.0
72.	उमकाटेट, मवलंग	Umkatait, Mawlong	100.0
73.	ख्राई लव लिंगडोह, पइनुरस्ला	Khrai Law Lyngdoh, Pynursla	150.0

74.	लव लिंगडोह मवशुन,पइनुरस्ला	'Law Lyngdoh Mawshun, Pynursla	100.0
75.	लव लिंगडोह लइटिंग, पइनुरस्ला	'Law Lyngdoh Lyting, Pynursla	100.0
76.	रेड शबंग लव एडंग, पइनुरस्ला	Raid Shabong Law Adong, Pynursla	700.0
	पश्चिमी खासी हिल्स जिला के पावन वन		
77.	उ लव लिंगडोह नंगलाइंगकैन, महराम सईमशिप	'U Law Lyngdoh Nonglyngkien Maharam Syiemship	90.0
78.	उ लुम संगलिया नंगलाइंगकैन, महराम सईमशिप	'U Lum Sanglia Nonglyngkien, Maharam Syemship	45.0
79.	उ लुम ब्ली नंगलाइंगकैन, महराम सईमशिप	'U Lum Blei Nonglyngkien; Maharam Syiemship	55.0 200.0
80.	लव लिंगडोह नंगलांग, महराम सईमशिप	'Law Lyngdoh Nonlang, Maharam Syiemship	55.0
81.	ल्व किन्टंग मवलंगवीर, महराम सईमशिप	'Law Kyntang Mawlangwir, Maharam Syiemship	300.0
82.	लव किन्टंग मवटेन, महराम सईमशिप	'Law Kyntang Mawten, Maharam Syiemship	100.0
83.	लव लिंगडोह रंगमाव, महराम सईमशिप	'Law Lyngdoh Rangmaw, Maharam Syiemship	400.0
84.	लव किन्टंग मवथावेव, महराम सईमशिप	'Law Kyntang Mawthawiaw, Maharam Syiemship	100.0
85.	नंगसिन्रिह, महराम सईमशिप	Nongsynrih, Maharam Syiemship	100.0
86.	लव लिंगडोह नंगलैट, मवलंग सईमशिप	'Law Lyngdoh Nonglait, Mawlang Syiemship	50.0
87.	लव एडंग मवलंग, नंगख्लाव सईमशिप	'Law Adong Mawlong, Nongkjlaw Syiemship	200.0
88.	क्हलाइ लिनंगुन मारियम, नोबोसोफोह सईमशिप	Kyllai Lyngun Mariam, Nobosohphoh Syiemship	80.0
89.	लिंगडोह मवनई, नोबोसोपोह सईमशिप	Lyngdoh Mawnai, Nobosohphoh Syiemship	80.0
90.	लव लिंगडोह नंगब्री, पइनडेंग–नंगब्री	'Law Lyngdoh Nongbri, Pyndeng-nongbri	5.0
91.	लव किन्टंग लिंगडोह, इवरेन	'Law Kyntang Lyngdoh, Iawren	10.0
92.	लव लिंगडोह मवलोट, फाइलुट	'Law Lyngdoh Mawlot, Phyllut	20.0
93.	लव लिंगडोह वानियंग सवकपोह, श्नगिमावलेन	'Law Lyngdoh Wanniang Sawkpoh, Shngimawlein	7.0
94.	डिंगलेगबाह, रइंक्सेह	Diengliengbah, Ryngikesh	0.5
95.	लव लिंगडोह वाहलंग, नंगरख्लुंग	'Law Lyngdoh Wahlang, Nongklung	10.0
	पूर्वी गारो हिल्स जिला के पावन वन		
96.	किम्प्रा हिल्स, रिसुबक्रपारा	Kimpra Hills, Risubakrapara	20.0

97. कोन्डल हिल्स, रिसुबक्रपारा	Kondal Hills, Risubakrapara	10.0
98. वाल्ची रूरम हिल्स, रिसुबक्रपारा	Walchi Ruram Hills, Risubakrapara	25.0
99. गना रम-रम रक, मेघापगिरी नोकमा	Gana Ram-ram rock, Megapgiri Nokma	30.0
100. मियापारा रंगाडोम, मियापारा	Miapara Ranggadom, Miapara	1.0
101. बोगो मियापारा, रंगाडोम, बोरो मियापारा	Bogo Miapara Ranggadom, Boro Miapara	10.0
102. जोन्गोलामियापारा, जोंगला	Jangola Miapara, Jongala	10.0
103. रोमटागिरी, रोमटागिरी	Romtagiri, Romtagiri	37.5
पश्चिमी गारो हिल्स जिला के पावन वन		
104. गेरागिरी, मिलिम	Goragiri, Millim	25.0
105. दमालगिरी, तुरा	Damalgiri, Tura	50.0
106. अंगालगिरी, अींगालगिरी	Angalgiri, Anggalgiri	20.0
107. असीगिरी, असीगिरी	Asigiri, Asigiri	4.0
108 जेलबोंपारा, अम्पाटी	Jelbongpara, Ampati	20.0
109. साडोलपारा, जोग्किपारा	Sadolpara, Jongkipara	30.0
110. जोग्किपारा, अबागिरी	Hongkipara, Abagiri	7.0
111. दारूंगिरी, दारूंगिरी	Daronggiri, Daronggiri	25.0

माक्कलांग पावन वन के निकट नृत्य करती खासी जनजातियॉ

पावन वनों से अनेकों जलधारायें निकलकर नदी का रूप लेंते है जो यहाँ के लोगों के लिये जीविका का मुख्य साधन है। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह भी ज्ञात हुआ है कि इन वनों में बड़ी संख्या में पेड़-पौधों की संकटग्रस्त (Endangered) दुर्लभ (Rare) एवं स्थानिक (Endemic) जातियाँ संरक्षित हैं। खान एवं अन्य (1977) ने अपने अध्ययन में बताया कि पौधों की कुल 1,236 स्थानीय जातियों में से 90 जातियॉ इन्ही वनों में संरक्षित हैं। इन पावन वनों से पौधो की कुल 514 जातियां उल्लेखित हैं जो 131 कुलों के 340 वंशो से सम्बन्धित हैं। मेघालय के पावन वनों में उपलब्ध कुछ संकटग्रस्त, दुर्लभ व स्थानिक वनस्ततियाँ तालिका -2 में निम्नवत् हैं। समृद्ध जैव विविधता के कारण इन पावन वनों को 'जीन बैंक' की संज्ञा दी जाती है जहॉ पर स्वस्थानीय जनन संसाधन संरक्षित है। इन वनों से यहॉ की जनजातियॉ अपनी जीविका चलाती है। इन वनों से दवाई, साग-सब्जियॉ तथा फलों का उपयोग करते हैं।

तालिका – 2

मेघालय के पावन वनों में उपलब्ध संकटग्रस्त (Endangered) दुर्लभ (Rare) व स्थानिक (Endemic) वनस्पतियाँ निम्नवत हैं–

क्र सं.	वनस्पतिक नाम		स्थिति
1.	एसर लेवीगेटम	Acer laevigatum	दुर्लभ
2.	एस्क्वीनेन्थस पैरासिटिका	Aeschynanthus parasitica	स्थानिक
3.	एस्क्वीनेन्थस सिक्किमेन्सिस	Aeschynanthus sikkimensis	दुर्लभ
4.	एस्क्वीनेन्थस सुपरबा	Aeschynanthes superba	स्थानिक
5.	एलिएसा प्लानटैगो–एक्वेटिका	Alisma plantago-aquatica	दुर्लभ व स्थानिक
6.	एपोडाइटस डिमीडियेटा	Apodytes dimidiata	दुर्लभ
7.	अर्डिसिया ग्रीफिथी	Ardisia griffithii	स्थानिक
8.	आर्टोकार्पस गोमेंजियाना	Artocarpus gomeziana	दुर्लभ
9.	बलियोस्पर्मम माइक्रेन्थम	Baliospermum micranthum	स्थानिक
10.	बीगोनिया ब्रेविकॉलिस	Begonia brevicaulis	संकटग्रस्त
11.	बल्बोफ्हलम ग्रिफिथी	Bulbophyllum griffithii	दुर्लभ
12.	कैलिकार्पा साइलोकैलिक्स	Callicarpa psilocalyx	दुर्लभ
13.	कैमेलिया काडुका	Camellia cauduca	संकटग्रस्त
14.	कैरेक्स रिपेन्डा	Carex repanda	संकटग्रस्त
15.	कार्पिनस विमिनिया	Carpinus viminea	दुर्लभ
16.	सिरोपीजिया एन्गुस्टिफोलिया	Ceropegia angustifolia	दुर्लभ
17.	चिरिटा हमोसा	Chirita hamosa	दुर्लभ
18.	सिनामोमम् पॉसिफ्लोरम	Cinnamomum pauciflorum	दुर्लभ
19.	सिट्रस लेटिपस	Citrus latipes	स्थानिक
20.	क्लीमेटिस एपिकुलाटा	Clematis apiculata	दुर्लभ व संकटग्रस्त
21.	क्लीरोडेन्ड्रम हैस्टैटम्	Clerodendrum hastatum	दुर्लभ
22.	इलेग्नस कन्फेरटा	Elaeagnus conferata	संकठग्रस्त
23.	इलियोकार्पस एक्युमिनेटस	Elaeocarpus acuminatus	दुर्लभ व संकटग्रस्त
24.	इरियोकॉलान क्रिस्मेटम	Eriocaulon cristatum	संकटग्रस्त
25.	इयुनिमस लाउसोनि	Euonymus lawsonii	स्थानिक
26.	फिमब्रीस्टाइलिस स्टोलोनिफेरा	Fimbristylis stolonifera	दुर्लभ व स्थानिक
27.	फेसिस्टिगमा वेरूकोसम	Fissistigma verrucosum	दुर्लभ
28	फ्रेक्सिनस फ्लोरीबुन्डा	Fraxinus floribunda	दुर्लभ व स्थानिक
29.	ग्लोचीडीओन थामसोनि	Glochidion thomsonii	दुर्लभ व स्थानिक
30.	गोल्डफुसिया ग्लैब्राटा	Goldfussia glabrata	स्थानिक
31.	गोम्फोस्टीम्मा लुसिडम	Gomphostemma lucidum	दुर्लभ व स्थानिक
32.	हेडेरा नेपालेन्सिस	Hedera nepalensis	दुर्लभ
33.	हेडीकियम डेकि्यनम	Hedychium dekianum	दुर्लभ व स्थानिक
34.	इलेक्स इम्बेलियोडिस	Ilex embelioides	संकटग्रस्त, दुर्लभ व स्थानिक

35.	इलेक्स वेनुलोसा	Ilex venolosa	दुर्लभ व स्थानिक
36.	इम्पेशेन्श एकुमिनटा	Impatiens acuminata	स्थानिक
37.	इम्पेशेन्श खसियाना	Impatiens khasiana	दुर्लभ व स्थानिक
38.	इम्पेशेन्श लेविगेटम	Impatiens levigatum	स्थानिक
39.	इम्पेशेन्श पोरेकटा	Impatiens porrecta	दुर्लभ व स्थानिक
40.	लिन्डेरा लेटिफोलिया	Lindera latifolia	दुर्लभ
41.	लिपेरिस एक्युमिनेटा	Liparis acuminata	दुर्लभ व स्थानिक
42.	माइकेलिया पन्डुयाना	Michelia punduana	दुर्लभ
43.	माइक्रोपेरा मानि	Michropera manii	दुर्लभ व स्थानिक
44.	मोरिन्डा विलोसा	Morinda villosa	दुर्लभ
45.	निपेन्थीस खासियाना	Nepenthes khasiana	संकटग्रस्त, दुर्लभ व स्थानिक
46.	ओफियोराइजा हिस्पिडा	Ophiorrhiza hispida	संकटग्रस्त
47.	ओफियोराइजा वाट्टी	Ophiorrhiza wattii	संकटग्रस्त
48.	पनेक्स स्यूडो-जिन्सेंग	Panax pseudo-ginseng	संकटग्रस्त
49.	पन्टलिन्जिया सेराटा	Pantlingia serrata	दुर्लभ व स्थानिक
50.	पेरामिग्निया मिक्रेन्था	Paramignya micrantha	स्थानिक
51.	परसिया पारविफ्लोरा	Persea parviflora	दुर्लभ व स्थानिक
52.	फोटोनिया कस्पिडाटा	Photinia cuspidata	दुर्लभ व स्थानिक
53.	फोटीनिया पोलिकार्पा	Photinia polycarpa	दुर्लभ
54.	पिक्रस्मा जावानिका	Picrasma Javanica	दुर्लभ
55.	प्लीयोन लेजेनेरिया	Pleione lagenaria	संकटग्रस्त
56.	पोगोस्टेमोन स्ट्राइगोसस	Pogostemon strigosus	दुर्लभ व स्थानिक
57.	पोराना रेसीमोसा	Porana racemosa	दुर्लभ
58.	साइकोट्रिया सिम्प्लोसिफोलिया	Psychotria symplocifolia	दुर्लभ व संकटग्रस्त
59.	क्वेरकस ग्लाउका	Quercus glauca	दुर्लभ
60.	रूबस खासियाना	Rubus khasiana	दुर्लभ व स्थानिक
61.	सैलिक्स सिलोस्टिग्मा	Salix psilostigma	दुर्लभ व स्थानिक
62.	शिमा खासियाना	Schima khasiana	दुर्लभ व स्थानिक
63.	शिनेसियो जोवाईन्सिस	Senecio jowaiensisi	स्थानिक
64.	सोनेरिला खासियाना	Sonerilla khasiana	दुर्लभ व स्थानिक
65.	स्टरकुलिया खासियाना	Sterculia khasiana	संकटग्रस्त
66.	सिम्पाजिया मोनोडेल्फा	Sympagia monodelpha	स्थानिक
67.	टेनियोफाइलम खासियानम्	Taeniophyllum khasianum	दुर्लभ व स्थानिक
68.	ट्राइवेल्वेरिया कांजिलालाई	Trivalvaria kanjilalii	संकटग्रस्त
69.	टूपिडेन्थस कैलिप्ट्रस	Tupidanthus calyptratus	दुर्लभ
70.	टरपीनिया नेपालेन्थिस	Turpinita nepalensis	दुर्लभ
71.	अल्मस लेन्सिफोलिया	Ulmus lancifolia	दुर्लभ
72.	वान्डा सिरूलिया	Vanda coerulea	दुर्लभ व स्थानिक

73.	वाइबरनम् सिमोन्सी	Viburnum simonsii	स्थानिक
74.	ज्युक्जाइन पल्क्र	Zeuxine pulchra	संकटग्रस्त

ये वन धार्मिक विश्वासों व मान्यताओं की देन के साथ साथ उस स्थान विशेष के पारिस्थितिक तंत्र को संतुलित एवं स्वस्थ रखने व जैव-विविधता को संरक्षण प्रदान करते हैं। समय के साथ साथ इन वनों की वर्तमान दशा में भी परिवर्तन आया है। पश्चिमी सभ्यता का अनुसरण, सुदूर गावों का धीरे परन्तु सतत् शहरीकरण, बढ़ती जनसंख्या का दबाव, रोजगार के अवसरों में कमी, कृषि के लिये भूमि की बढ़ती मॉग आदि अनेक ऐसे कारण है, जिनका प्रतिरोध करने में ये वन असमर्थ हैं और अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये पूर्णतः हमारे उपर निर्भर है। ऐसी स्थिति में हमारा दायित्व होता है कि हम अपनी मान्यताओं व विश्वासों के साथ -२ जैव विविधता की इस अनमोल धरोहर को उसके वास्तविक स्वरूप में ही संरक्षित रखने में अपना योगदान दें।

———————

कटे पेड़ बंजर धरा
जहरीला है जल।
आज बिताना है कठिन
कैसा होगा कल?

हमारी वनस्पतिक धरोहर : गोंद वाले वनपादप

बिपिन कुमार सिन्हा, रमेश कुमार, विवेक नारायण सिंह एवं *बीरेन्द्र कुमार शुक्ला
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी परिमंडल : शिलांग
*भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मध्य क्षेत्र : इलाहाबाद

वनस्पतियों का हमारे जीवन में बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान है। भोजन, वस्त्र व आवास के अतिरिक्त अनेक अन्य कार्यों में जैसे अस्वस्थ होने पर औषधीय गुणों वाली वनस्पतियों से उपचार, वनों की इमारती लकड़ियों से खेती के उपकरण व शिकार के लिये हथियार बनानें आदि में मानव इनका प्रयोग अनादि काल से करता रहा है। वर्तमान समय में आवश्यकताओं के साथ-साथ मनुष्य की पौधों पर निर्भरता बढ़ी है। व्यापार व उद्योगों में भी वनस्पतियों का भरपूर उपयोग किया जाता है। इसी संदर्भ में यहाँ उन पौधों पर प्रकाश डाला गया हैं, जिनसे हमें गोंद या रेसिन प्राप्त होता है। ये गोंद हमारे स्वास्थ्य के लिये उपयागी होने के साथ-2 औषधीय एवं व्यवसायिक कार्यों में भी महत्वपूर्ण हैं। अतः ऐसे वृक्षों की जानकारी जनमानस को देकर इन्हें बागवानी के लिये प्रेरित कर हम इनका संरक्षण भी कर सकते है, साथ ही इनसे स्थानीय लोग आर्थिक लाभ भी प्राप्त कर सकते हैं। वर्तमान समय में गोंद, रेसिन का मूल्य बाजार मे बहुत अधिक है और इसकी उपलब्धता भी कम है। उदाहरण के लिये बबूल के गोंद का प्रति किलो मूल्य 140 रू. है। इसी प्रकार अन्य गोंद भी काफी महंगे है एवं उनकी उपयोगिता भी अलग-अलग है।

खैर (एकेसिया कैटचू)

बुकेनेनिया इअंजन

प्रस्तुत लेख में ऐसे वृक्षों का वनस्पतिक, स्थानीय हिन्दी व व्यवसायिक नामों के साथ-साथ ही पौधों का संक्षिप्त वनस्पतिक विवरण, पहचान के गुण, भारत में पाये जाने का स्थान एवं उपयोगिता आदि का विवरण दिया गया है। गोंद प्रदान करने वाले कुछ प्रमुख वन पादप निम्न तालिका में दिये गये हैं।

वानस्पतिक नाम	स्थानिक हिन्दी नाम	व्यापारिक नाम
बुकनेनिया लेन्जन	चिरौंजी	गोंद अचार
केशिया फिस्टुला	अमलतास	–
अकेशिया कटैच्यू	खैर	गोंद खैर
अकेशिया जैक्वीमोन्टाई	बवली	गोंद बावल
अकेशिया निलोटिका	बबूल	गोंद बबूल
अकेशिया सेनेगल	कुमठा	गम अरेबिक
अकेशिया टोरटोलिस	इजरायली बबूल	–
अकेशिया ल्यूकोफ्लोइया	अरूँज	गोंद अरूँज
मेंगीफेरा इंडिका	आम	गोंद आम
फाईलेन्थस इम्बिलिका	ऑवला	गोंद अखर
मिल्यूसा टोमेटोसा	अम्ब	कारी गोंद
मिल्यूसा वेलुटिना	दोम साल	कारी गोंद
स्टरकूलिया यूरेन्स	कड़ाया	गोंद कतीरा
गेरूगा पिन्नेटा	करपटा	–
फेरोनिया लाईमोनिया	कैंथ	–
राइटिया टिंक्टोंरिया	दुधी	–
कोकलोस्पर्मम रेलीजिओसम	गिरनार	गम ट्रेगाकान्थ
लीनिया कारोमेंडेलिका	गुजरन	गोंद झींगन
कौमीफोरा वाईटीआई	गुगल	गोंद लीसा गुगल
बोहिनिया रेसीमोसा	झींझा	–
ब्यूटिया मोनोर्स्पमा	पलाश	बॅगाल किनोगम
ऐनोगीसस लेटीफोलिया	धावड़ा	गोंद धावड़ा
ऐनोगीसस पेडुला	धौकड़ा	गोंद धावड़ा
अजेडिरेक्टा इंडिका	नीम	–
फाइकस बेंगालेंसिस	बरगद	–
फाइकस रेसिमोसा	गूलर	–
फाइकस रेलिजिओसा	पीपल	–
टेरोकार्पस मार्सूपियम	बीजासाल	–
ईगल मारमिलोस	बेल	–
जट्रोफा करकस	रतनजोत	–
सेयमिडा फेब्रीफ्यूजा	रोजन	–
बोसवेलिया सिरेटा	सलई	तेलयुक्त लीसा–सलई
एबेल्मोस्कस एस्कुलेन्टस	भिन्ड़ी	–
मिलिया एजेडीराच	बकायन	–
बोहिनिया रिट्यूसा	सेहुरा	–
साइमोप्सिस टेट्रागोनोलोबा	ग्वार	–
गार्डिनिया ग्यूमीफेरा	ढ़ीकामाली	–

गार्डिनिया रेजिनीफेरा	मार	–
केरिया अरबोरिया	कुम्भी	–
सेमीकार्पस एनाकर्डियम	भीलवा	–
अल्बीजिया प्रोसेरा	सफेद सिरिस	सिरिस
अल्बीजिया लेबेक	सिरिस	–
मोरिंगा ओलीफेरा	सहजन	गोंद सेंजना
बोम्बेक्स सीबा	सेमल	लेसा सेमल
ल्यूसिना ल्युकोसिफेला	सु-बबूल	–

बुकनेनिया लेन्जन (कुल –ऐनाकार्डियेसी) ''अचार'', ''चिरौंजी''

यह वृक्ष 5 से 7 मीटर ऊँचा होता है, इसकी छाल भूरे–काले रंग की होती है। पुष्प हरे सफेद रंग के होते हैं। पके फल काले अण्डाकार होते हैं, फल के उपर कड़ा आवरण होता है। इसके बीज को चिरौंजी कहते हैं। यह वृक्ष भारत के उष्णकटिबंधीय वनों में बहुतायत से पाया जाता है।

एनोजिसस लैटिफोलिया

उपयोगिता : इसका गोंद आंत्रशोध एवं उदर विकार में लाभप्रद हैं। साथ ही इसका प्रयोग वस्त्रों को रंगने में भी करते हैं।

केशिया फिस्टुला (कुल–सिजलपिनेसी) ''अमलताश''

यह वृक्ष 8-10 मी. ऊँचा होता है। इसकी छाल सफेद-भूरे रंग की होती है। इसके पुष्प पीले रंग एवं गुच्छों में लगे होते हैं। इसके फल एक से दो फिट लम्बे एवं सख्त होते है। यह वृक्ष सारे भारत में बहुतायत से पाया जाता है।

उपयोगिता : इस पौधे का गोंद आंत्रशोध एवं विकार में लाभप्रद है।

बुटिया मोनोस्पर्मा

अकेशिया कटैच्यू (कुल–माइमोसेसी) ''खैर''

यह वृक्ष मध्यम ऊँचाई का 3 से 5 मीं का होता है। इसकी छाल स्लेटी काले रंग की होती है। पुष्प हल्के पीले-सफेद रंग लिये होते है तथा फल 5 से 10 से.मी. लम्बे, भूरे रंग के होते हैं। यह शुष्क प्रदेशों में पाया जाता है। इसके तने से कत्था निकाला जाता है जो पान में तथा अन्य औषधीय कार्यो में प्रयोग होता है।

उपयोगिता : इस पौधे के तने से

खैर गोंद निकलता है जो खाने हेतु व अन्य व्यवसायिक कार्यो में उपयागी है। इसका गोंद टॉन्सिल, स्त्रियों के श्वेत प्रदर एवं मासिक के समय होने वाले दर्द में लाभप्रद है।

सलाइ (बॉस्वेलिया सेरेटा)

अकेशिया जेक्वीमोन्टाई (कुल–माइमोसेसी) ''बावली''

यह झाड़ीनुमा कॉटेदार 3 से 5 मीं ऊँचाई का वृक्ष है। इसका पुष्प पीले रंग का होता है। फल 3 से 7 से.मी. लम्बे एवं 5 से 7 बीज वाले होते हैं। यह शुष्क प्रदेशों में पाया जाता है।

उपयोगिता : इस पौधे की छाल टेनिन उद्योग में एवं पत्तियॉ चारे हेतु उपयोगी हैं। इसके छाल से गोंद निकलता है जो खाने में प्रयोग होता है।

स्टर्कुलिया युरेंस

अकेशिया निलोटिका (कुल–माइमोसेसी) ''बबूल''

यह कांटेदार 7 से 8 मीं ऊँचा वृक्ष है। छाल काले रंग की होती है। इसका पुष्प गाढ़े पीले रंग का एवं फल 7 से 8 से.मी. लम्बा एवं बीज मोतियों के दाने की भाँति होता हैं। यह शुष्क प्रदेश में बहुतायत से पाया जाता है। पौधे की छाल टैनिन उद्योग मेः तथा दंत रोगो में उपयोगी है।

उपयोगिता : इस पौधे का गौंद खाने हेतु उपयोग में लाया जाता है। यह स्वास्थ्य वर्धक एवं बलवर्धक है। यह लीवर टॉनिक है, साथ ही यह श्वास रोग एवं बवासीर में लाभप्रद है।

अकेशिया सेनेगल (कुल–माइमोसेसी) ''कुमठा''

यह 3 से 6 मी.ऊँचा कांटेदार वृक्ष है। इसमें कांटे मुख्यतः 3 की संख्यामें पत्तियों के नीचे लगे होते हैं पुष्प सफेद रंग के व इसके फल 5 से 8 से.मी. लम्बे एवं फीते की तरह होते हैं। यह वृक्ष भारत के शुष्क जलवायु में बहुतायत से पाया जाता है।

उपयोगिता : इस पौधे का गोंद खाने हेतु उपयोग में लाया जाता है तथा यह मधुमेह में लाभप्रद व शक्तिवर्धक भी है।

अकेशिया टोरटोलिस (कुल–माइमोसेसी) ''चिलापती'', ''इजरायली बबूल''

यह 8 से 10 मी. ऊँचा कांटे युक्त वृक्ष है। इसके पुष्प सफेद एवं गोल आकार में लगे होते हैं व इसके फल 5 से 10 सेमी लम्बे एवं फीते की तरह होते हैं। यह वृक्ष भारत के शुष्क रेगिस्तानी जलवायु में बहुतायत से पाया जाता है। इसके फल व पुष्प खाये जाते हैं।

उपयोगिता : इस पौधे से प्राप्त गोंद का व्यवसायिक उपयोग होता है।

अकेशिया ल्यूकोफ्लोइया (कुल–माइमोसेसी) ''अरूँज'' ''सफेद कीकर''

यह 3 से 5 मी. तक ऊँचा वृक्ष है। जिसकी छाल–हल्का पीलापन लिये होती है। इसके पुष्प मटमैला सफेद रंग के एवं गेंद की तरह गुच्छों में लगे होते है। फल 8 से 15 सेमी तक लम्बे एवं हंसिये के आकार के होते है। यह उष्णकटिबन्धीय सूखे वन क्षेत्रों में बहुतायत से पाये जाते है।

उपयोगिता : इस पौधे के गोंद का उपयोग व्यवसायिक कार्यों (पेन्ट उद्योग) हेतु किया जाता है।

कोक्लोस्पर्मम रिलिजियोसम

मेंगीफेरा इंडिका (कुल–ऐनाकार्डियेसी) ''आम''

यह 8 से 10 मीटर तक ऊँचा वृक्ष होता है। इसकी छाल काले रंग की तथा कटी-फटी होती है। इसके पुष्प छोटे तथा हल्के पीले होते है। फल गुदेदार हरे रंग का होता है, जो पकने पर पीला हो जाता है। इसका फल खाद्य है व अचार एवं मुरब्बा बनाने के काम आता है। यह भारत मे सभी उष्ण प्रदेशों में पाया जाता है।

उपयोगिता : इस पौधे का गोंद पेट व दॉत दर्द में एवं व्यवसायिक कार्यो मे प्रयोग किया जाता हैं।

फाइलेन्थस एम्बिलिका (कुल–यूफोर्बिऐसी) ''ऑवला'', ''गोंद अखर''

यह वृक्ष 5 से 8 मीटर तक ऊँचा होता है। इसकी छाल हल्का सफेद रंग लिये होती है। इसके पुष्प हल्के पीले रंग के होते हैं। फल गोल व गूदेदार होता है, इसके फल में विटामिन-सी बहुतायत से पाया जाता है, जो श्वास सम्बन्धी रोगों में लाभदायक है। यह भारत के सभी शुष्क प्रदेशों में पाया जाता है।

उपयोगिता : इस पौधे का गोंद व्यवसायिक कार्यों में किया जाता है।

मिल्युसा टोमेंटोसा (कुल – ऐनोनेसी) ''ऊम्ब'', ''काशी गोंद'' ''किरवा''

यह 3.से 5 मीटर तक ऊँचा वृक्ष होता है। इसके पुष्प हंल्के गुलाबी रंग के होते है। फल गुच्छे में गुदेदार व काले रंग के होते है, यह भारत के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाता है। इसके पके फल खाये जाते हैं।

उपयोगिता : इस पौधे का गोंद कारी गोंद के नाम से बाजार में मिलता है, तथा यह व्यवसायिक उपयोग मे आता हैं।

मिल्टूसा वेलुटिना (कुल–ऐनोनेसी) ''दोमसाल''

यह 5 से 8 मी ऊँचा पर्णपाती वृक्ष है। इसकी छाल काले रंग की होती है। पुष्प पीले रंग के एवं पत्ती विपरीत क्रम में होते हैं। गोलाकार फल पकने पर बैगनी रंग के हो जाते हैं। यह भारत के शुष्क पर्णपाती मिश्रित वनों का वृक्ष है।

उपयोगिता : इसके गोंद का आयुर्वेद में दस्तावर के रूप में प्रयोग होता है।

स्टरकूलिया यूरेन्स (कुल – स्टरकुलियेसी) ''कडाया''

यह 7 से 8 मीटर ऊँचा वृक्ष होता है। वृक्ष की छाल सफेद भूरा रंग लिये होती है। पुष्प हल्के पीले हरे रंग के तथा केन्द्र में चटकीला लाल रंग का होता है। फल 4-6 की संख्या में होता है, जिस पर भूरे रंग के रोयें होते हैं, यह पौधा उष्णकटिबंधीय क्षेत्रो में अधिक मात्रा में पाया जाता है।

उपयोगिता : इस पौधे से कड़ाया गोंद निकलता है। जिसका उपयोग वस्त्र उद्योग में रंगो को गाढ़ा करने में किया जाता है। यह औषधि के रूप में विशेष रूप से पेटविकार मे प्रयोग होता है। इसका प्रयोग सौन्दर्य प्रसाधन बनाने में भी होता है।

गरूगा पिन्नेटा (कुल–बरसीरेसी) ''करपटा'', ''केकड़''

यह 15-20 मी ऊँचा वृक्ष है। इसकी छाल भूरे रंग की होती है। पुष्प पीले रंग के व अग्र टहनियों पर लगे होते है। फल गूदेदार तथा पकने पर खाये जाते हैं। यह वृक्ष उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है।

उपयोगिता : इस पौधे के गोंद का प्रयोग व्यवसायिक कार्यो में होता है।

फेरोनिया लिमोनिया (कुल–रूटेसी) ''कैंथ)

यह 4 से 5 मीं ऊँचा कांटेदार वृक्ष है। इसकी छाल काले भूरे रंग की होती है। पुष्प हरा पीलापन व लाल रंग लिये होता है। फल गोलाकार 5-8 सेमी आकार का एवं बाहरी छिलका सख्त होता है। इसका गुदा चटनी बनाने मे प्रयोग होता है। यह शुष्क प्रदेशों में अधिक मात्रा में पाया जाता है।

उपयोगिता : पौधे का गोंद व्यवसायिक कार्यो में प्रयोग होता है व इसका गोंद बबूल के गोंद की तरह ही प्रयोग होता है।

राइटिया टिंक्टोरिया (कूल–एपोसाइनेसी) ''दुधी''

यह पतझड़ वाला वृक्ष है जो 4 से 6 मी. उँचा होता है। इसकी छाल हल्के भूरे रंग की और स्वाद में कड़वी होती है। पुष्प सफेद रंग के व खुशबूदार होते है। फली लम्बी व जोड़ में होती है जो नीचे से जुड़ी होती हैं। यह शुष्क प्रदेशों मे अधिक पाया जाता है।

उपयोगिता : इसका गोंद डायरिया व पेचिस मे लाभदायक है व साथ ही यह मधुमेह में भी प्रयोग करते हैं।

कॉकलोस्पर्मम रिलीजिओसम (कुल–कॉक्लोस्पर्ममेसी) ''गिरनार'', ''कुम्भी''

यह वृक्ष 10 से 15 मीटर ऊँचा होता है। इसकी छाल मुलायम सफेद रंग की होती है। पुष्प चमकीले पीले रंग के होते हैं। फल 10 सेमी लम्बा होता है। यह उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में पाया जाता है।

उपयोगिता : इसका गोंद आइस्क्रीम उद्योग में प्रयोग किया जाता है।

लॉनिया कोरोमंडेलिका (कुल–ऐनाकार्डियेसी) ''गुरजन'', ''गोदल''

यह पतझड़ वाला विशालकाय 8 से 15 मी. ऊँचा वृक्ष है। इसकी छाल हल्का भूरापन लिये होता है। पुष्प पीले हरे रंग के होते है। फल 1 से 1.5 सेमी. लम्बा होता है। यह शुष्क प्रदेशों मे अधिक पाया जाता है।

उपयोगिता : इसके तने से झींगन गोंद प्राप्त होता है, जो चीनी मिल उद्योग में सफाई हेतु प्रयोग होता है।

कॉमीफोरा वाइटीआई (कुल–बरसीरेसी) ''गूगल''

यह झाड़ीनुमा वृक्ष 1 से 2 मीटर तक ऊँचा होता है। इसकी छाल सफेद रंग की होती है। छाल पेपर की तरह उतरती रहती है। पुष्प भूरे लाल रंग के व गुच्छे में होते है। फल गोलाकार होता है। यह शुष्क क्षेत्रों का पौधा है।

उपयोगिता : इसका गोंद औषधि, अगरबत्ती एवं इत्र उद्योग में प्रयोग किया जाता है। इसका गोंद उच्चरक्तचाप, मूत्रविकार, अलसर, बवासीर व गठिया रोग में बहुत लाभकारी है।

बॉहिनिया रेसीमोसा (कुल–सिसलपीनेसी) ''झीझा''

यह 7 से 8 मी. ऊँचा वृक्ष है। इसकी छाल गहरे भूरे व काले रंग की होती है। पुष्प गुलाबी सफेद रंग लिये होते है। फली 10 से 15 सेमी. लम्बी एवं बीज 10-12 तक होती है। यह उष्णकटिबन्धीय वनों में पाया जाता है।

उपयोगिता : इसका गोंद वस्त्र उद्योग एवं पेपर उद्योग में प्रयोग किया जाता है।

ब्यूटिया मोनोस्पर्मा (कुल–फबेसी) '' ढ़ाक / पलाश''

यह वृक्ष 5 से 7 मी. ऊँचा होता है। इसकी छाल हल्के भूरे रंग की होती है। पुष्प गहरे लाल रंग के एवं फली 8-9 सेमी. लम्बी प्रायः एक बीज की होती है। यह शुष्क प्रदेशों में पायी जाती है।

उपयोगिता : इसका गोंद खूनी ऑव व डायरिया में लाभदायक है।

ऐनोगीसस लेटिफोलिया (कुल – कोम्ब्रिटेसी) ''धावड़ा''

यह वृक्ष प्रायः 10 से 15 मी. ऊँचा होता है। छाल सफेद भूरे रंग की होती है। पुष्प हल्के पीले रंग के एवं फल 4-5 सेमी. लम्बा, गोलाकार व नुकीला होता है। यह साधारणतया उष्णकटिबन्धीय प्रदेश में पाया जाता है।

उपयोगिता : इसका गोंद बबूल के गोंद की तरह ही शक्तिवर्धक खाद्य का काम करता है।

एनोगीसस पेंडुला (कुल – कोम्ब्रिटेसी) ''धौकड़ा''

इसका वृक्ष 7 से 8 मी. ऊँचा व टहनिया झुकी होती हैं। पुष्प पीले रंग के व फल 5-6 सेमी. के गोलाकार व पंखुड़ीयुक्त होते है। यह भारत के शुष्क प्रदेशों में पाया जाता है।

उपयोगिता : इसका गोंद बबूल के गोंद की तरह ही खाने मे प्रयोग होता है जो शक्तिवर्धक है।

अजेडिरेख्टा इण्डिका (कुल–मीलिऐसी) ''नीम''

इस विशालकाय वृक्ष की छाल गहरे एवं काले रंग की होती है। पुष्प हल्का सफेद-हरा रंग लिये, फल 1-1.5 सेमी. का अण्डाकार, गुदेदार व पीले रंग का होता है। यह भारत के उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में पाया जाता है।

उपयोगिता : इसका गोंद दवा उद्योग में प्रयोग होता है, तथा यह त्वचा सम्बन्धी रोगों में उपयोगी है। यह उत्प्रेरक का कार्य करता है व रेशम उद्योग में रंगाई हेतु प्रयोग किया जाता है।

फाइकस बेंगालेंसिस (कुल–मोरेसी) ''बरगद''

इस विशालकाय सदाबहार वृक्ष की जड़े तनों से हवा में लटकी रहती है, जो इसे सहारा प्रदान करती हैं। फल गोलाकार लाल रंग के तथा पत्तियों के किनारे लगे होते है। यह देश के सभी भागों में विशेषकर मैदानी भागों में बहुतायत से मिलता है।

उपयोगिता : इसका गोंद गठिया रोग में उपयोगी है तथा यह पेचिस में भी लाभदायक है।

फाइकस रेसिमोसा (कुल–मोरसी) ''गूलर''

6 से 12 मी. ऊँचे पतझड़ वाले वृक्ष की छाल चिकनी व धुधली सफेद या लाल भूरी रंग की होती हैं। फल गुदेदार तथा खोखली गुफा की तरह होते हैं जो पकने पर चिकना, मांसल व काले रंग का हो जाता है। यह देश के सभी भागों में बहुतायत से मिलता है।

उपयोगिता : इसका गोंद दस्त व मधुमेह में लाभप्रद होता है तथा रक्त शोधक के रूप में उपयोगी है।

फाइकस रिलिजिओसा (कुल–मोरेसी) ''पीपल''

इस विशालकाय छतरीनुमा 15-20 मी. ऊँचे वृक्ष की छाल चिकनी व भूरी-सफेद रंग की होती हैं। फल जोड़ी में होते हैं जो कच्चे पर लाल-हरे व पकने पर गहरे बैगनी रंग के हो जाते हैं। यह देश के सभी भागों में बहुतायत से मिलता है।

उपयोगिता : इसका गोंद दस्तावर होता है तथा खाज - खुजली में लेप के रूप में उपयोगी है।

टेरोकार्पस मार्सूपियम (कुल–फबेसी) ''बीजासाल''

यह सदाबहार वृक्ष है जो 15 से 20 मी. ऊँचा होता है। छाल भूरे काले रंग की होती है। पुष्प पीले रंग के होते हैं फली गोलाकार लम्बी तथा चौड़ी पंखुड़ीयुक्त एवं एक बीजयुक्त होती है। यह वृक्ष उष्णकटिबन्धीय भागों मे नदियों के किनारे पाया जाता है।

उपयोगिता : इसका गोंद आंत्रशोध एवं दॉत दर्द में उपयोगी है, साथ ही यह वस्त्र उद्योग व चमड़ा उद्योग में भी प्रयोग होता है।

ईगल मारमिलोस (कुल–मोरेसी) ''बेल''

यह पतझड़ वाला कॅाटायुक्त वृक्ष है जो 7 से 10 मी. ऊँचा होता है। छाल सफेद-भूरे रंग की होती है। पुष्प हरे-सफेद रंग के, खुशबुदार, फल 8-15 सेमी. का गोलाकार होता है, जिसका बाहरी छिलका सख्त होता है। यह शुष्क प्रदेशों मे अधिक पाया जाता है।

उपयोगिता : इसका गोंद पेन्ट उद्योग, गोंद उद्योग में तथा डिस्टेम्पर में मिलाकर दीवारों को रंगने हेतु प्रयोग होता है।

जेट्रोफा करकस (कुल–यूर्फोबिएसी) ''रतनजोत''

यह 3-4 मी. ऊँचा झाड़ीनुमा पौधा है। पत्तियॉ अण्डाकार व पाँच भागों में बंटी होती हैं। पुष्प हरा-पीला रंग लिये होता है। फल गोलाकार तथा 3 सेमी, चौड़ा होता है। यह शुष्क प्रदेशों में अधिक पाया जाता है।

उपयोगिता : इसका गोंद लाल रंग का होता है, जो वस्त्रों की रंगाई एवं छपाई हेतु प्रयाग में लाया जाता है।

सोयमिडा फब्रीफ्यूजा (कुल–मीलिएसी) ''रोहन''

इस पतझड़ वाले विशालकाय वृक्ष की छाल हल्के भूरे रंग की व पुष्प सफेद रंग के हल्के सुगन्धित होते है। फल गोलाकार तथा 5-8 सेमी. व्यास के होते है। यह उष्णकटिबन्धीय वनों में पाया जाता है।

उपयोगिता : सरेश उद्योग व गोंद उद्योग में इसका गोंद एक महत्वपूर्ण अवयव है।

बोसवेलिया सिरेटा (कुल – बरसीरेसी) ''सलई''

साधारणतया 8-15 मी. ऊँचे पतझड़ वाले वृक्ष की छाल सफेद भूरे रंग व पुष्प सफेद पीलापन लिये होते है। फल 1-2 सेमी. लम्बा होता है। यह उष्णकटिबन्धीय पौधा है।

उपयोगिता : इसका गोंद आंत्रशोध, मूत्ररोग, व पेट दर्द एवं श्वास रोग में उपयोगी है, तथा यह लोहबान की तरह उपयोग में लाते हैं।

एबेल्मॉस्कस एस्कुलेन्टस (कुल-मालवेसी) ''भिन्डी''

1 से 2 मी. लम्बे वार्षिक पौधों के पुष्प पीले रंग के व फल बहुअण्डपी संयुक्त व उर्ध्व होते हैं, जो पकनें पर फट जाते है। यह भारत में सभी सभी जगह उगते हैं।

उपयोगिता : इस पौधे का लसलसा गोंद दस्तावर तथा ऑव में उपयोगी है।

मीलिया एजेडीरख (कुल–मिलिऐसी) ''बकायन''

8 से 12 मी. लम्बे पर्णपाती वृक्ष की छाल भूरे रंग की व लम्बाई में फटी हुयी होती है। इसके पुष्प बैगनीं-सफेद रंग के व फल चिकने रसीले 3-6 बीज युक्त पकनें पर पीले रंग के होते हैं। यह भारत में मिश्रित वनों में पाया जाता है।

उपयोगिता : इस पौधे का गोंद प्लीहा की अति वृद्धि को रोकता है तथा चर्मरोगों में भी उपयोगी है।

बॉहनिया रिट्यूसा (कुल—सिजलपिनेसी) ''सेहुरा''

8 से 12मी. लम्बे वृक्ष लालिमा युक्त सफेद पुष्प 5-10 सेमी. लम्बे मुख्य अक्ष पर असीमाक्षी क्रम में लगे होते है। फली चपटी हरी नोंकदार तथा बीज अण्डाकार चिकने तथा गहरे भूरे रंग के होते है। यह मिश्रित वनों में बहुतायत से पाया जाता है।

उपयोगिता : इस पौधे का गोंद पेचिस, दस्त सिरदर्द व मलेरिया में उपयोगी है।

साइमोप्सिस टेट्रागोनोलोबा (कुल-फबेसी) ''ग्वार''

1मी. लम्बे वार्षिक पौधे तना टेढा-मेढ़ा पुष्प बैगनी रंग के तथा फल पतले, चपटे, नुकीले 5 से 12 बीजयुक्त तथा 4-7 सेमी. लम्बे होंते हैं। यह भारत के ज्यादातर भागों में उगाया जाता है।

उपयोगिता : इस पौधे का गोंद हड्डियों को मजबूती प्रदान करता है तथा टानिक मे रूप में प्रयोग आता है।

गार्डिनिया गमीफेरा (कुल–रूबिएसी) ''ढ़ीकामाली''

नीले भूरे रंग के छालयुक्त काँटेदार पर्णपाती वृक्ष के फूल पीले रंग के सुगन्धित तथा फल काष्ठीय, गोलाकार व चिकने होते हैं। यह भारत में शुष्क पर्णपाती मिश्रित वनों में पाया जाता है।

उपयोगिता : इसका गोंद बच्चों के तंत्रिका तंत्र की बिमारियों व पेचिस में दिया जाता है।

गार्डिनिया रेजिनीफेरा (कुल–रूबिएसी) ''मार''

3-5 मी. लम्बे पर्णपाती वृक्ष की छाल चिकनी भूरे रंग की पीले रेसिन युक्त फूल सफेद रंग के व सुगन्धित होते हैं। फल बहु अण्डपी, गोलाकार व रसयुक्त होते है तथा गुदे में धंसे होते हैं। यह भारत के शुष्क पर्णपाती मिश्रित वनों में पाया जाता है।

उपयोगिता : इसका गोंद चर्म रोगों में उपयोगी है।

कैरिया अरबोरिया (कुल – लेसिथिडेसी) ''कुम्भी''

8-16 मी. लम्बे पर्णपाती वृक्ष के छाल भूरे-काले रंग की तथा फूल हरे सफेद रंग के व फल गोल हरे रंग के चिरलग्न बाह्य दलपुंज युक्त होते है। बीज गूदे में धंसे होते है। यह भारत के सभी वनों में पाया जाता है।

उपयोगिता : इसका गोंद दस्त, पेचिस व मधुमेह में दिया जाता है।

सेमीकॉर्पस एनाकार्डियम (कुल –ऐनाकार्डिऐसी) ''भीलवा''

मध्यम लम्बाई वाले पर्णपाती वृक्ष के फूल हरे-पीले, फल एक अण्डपी अष्ठिफल वाले होते है। पकने पर ये अण्डाकार काले रंग के हो जाते हैं। यह भारत के मिश्रित पर्णपाती वनों में पाया जाता है।

उपयोगिता : इसका गोंद गठिया व तंत्रिका तंत्र की कमजोरी में दिया जाता है।

अल्बीजिया प्रोसेरा (कुल - माइमोसेसी)''सफेद सिरिस''

विशाल 15-20 मी. लम्बे पीली छाल वाले वृक्ष के पुष्प हरे सफेद रंग के होते है व फलियॉ 6-12 बीजयुक्त चपटी, चिकनी, भूरे रंग की होती है। यह उष्णकटिबन्धीय वनों में बहुतायत से मिलता है।

उपयोगिता : इसका गोंद स्त्रियों के श्वेत प्रदर में व मासिक धर्म की अनियमिताओं को दूर करने के लिये प्रयोग किया जाता है।

अल्बीजिया लेबेक (कुल – माइमोसेसी) ''सिरिस''

विशाल पतझड़ वाले वृक्ष की छाल भूरे रंग की नवीन भाग रोमयुक्त होते है। पुष्प डंठल रहित, एवं सफेद व सुगन्धित होता है। यह उष्णकटिबन्धीय वनों व सड़कों के किनारे बहुतायत से मिलता है।

उपयोगिता : इसका गोंद प्रायः बबूल के गोंद के तरह ही प्रयोग करते है, यह शक्तिवर्धक भी है।

मोरिंगा ओलिफेरा (कुल–मोरिंगेसी) ''सहजन''

3-4 मी ऊँचे पतझड़ वाले वृक्ष की छाल सफेद-भूरे रंग की होती है, पुष्प सफेद रंग का तथा फल बेलनाकार लम्बा होता है। यह शुष्क प्रदेशों में बहुतायत से मिलता है।

उपयोगिता : इसका गोंद छपाई उद्योग में प्रयोग होता है, एवं यह पेट विकार में लाभदायक है।

बॉम्बेक्स सीबा (कुल – बोम्बेकेसी) ''सेमल''

इस विशालकाय वृक्ष के नीचे का तना कांटेदार होता है। छाल सफेद-भूरे रंग की एवं पुष्प गहरे लाल रंग के व फल 8-10 सेमी. लम्बे एवं कठोर होते हैं। यह शुष्क प्रदेशों में बहुतायत से मिलता है।

उपयोगिता : इसका गोंद टानिक की तरह प्रयोग होता है, एवं यह कब्ज को ठीक करता है तथा खूनी पेचिस में लाभदायक है। गोंद उद्योग में भी यह लाभदायक है।

ल्यूसिना ल्युकोसिफेला (कुल–माइमोसेसी) ''सूबबूल''

यह सदाबहार वृक्ष है जो 7-8 मी. ऊँचा होता है। छाल भूरे रंग की व पुष्प सफेद गेंद की तरह के होती हैं। फल फीते के आकार के 15-20 सेमी लम्बे हरे रंग के होते हैं। यह विदेशी मूल का वृक्ष है जो भारत के शुष्क प्रदेशों में मिलता है।

उपयोगिता : इसका गोंद व्यवसायिक रूप में प्रयोग होता है।

———————

दाम्फा बाघ जीव अभयारण्य की वन एवं वनस्पतियां

विपिन कुमार सिन्हा एवं एन. ओडिओ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
पूर्वी परिमंडल, शिलांग

दाम्फा बाघ जीव अभयारण्य मिजोराम राज्य के मामित जिले में 23° 32' से 23° 41' उत्तर अक्षांश 92° 13' से 92° 27' पूर्व देशान्तर पर स्थित है। इस का कुल क्षेत्रफल लगभग 500 वर्ग कि. मी. है। इसकी स्थापना सन् 1985 में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा किया गया। इस अभयारण्य को दो रेन्ज में बांटा गया है। पहले रेन्ज का मुख्यालय तीरई जो उत्तर में एवं दूसरे रेन्ज का मुख्यालय फुलडुगसी जो पश्चिम में स्थित है। अभयारण्य के पश्चिम भाग की सीमा बगंलादेश से एवं उत्तरी - पश्चिम भाग की सीमा त्रिपुरा राज्य से लगती है। इस अभयारण्य के विभिन्न भागों की समुद्र तल से ऊचाई लगभग 200 से 900 मीटर तक है। यहां का औसत तापमान 9° से 32° से. तक रहता है एवं वर्षा 2000 से 2500 मी. मी. प्रति वर्ष तक होती है।

अभयारण्य का वनस्पतिक सर्वेक्षण का कार्य सन् 2005-06 में दो बार व्यापक रूप से किया गया। प्रथम अप्रैल में एवं द्वितीय अगस्त माह में। इन सर्वेक्षणों में लगभग 300 से भी अधिक पादप नमूने एवं सजीव पौधे एकत्रित किए गये। इनमें विभिन्न प्रकार के वृक्षों, आरोही लताओं शाकों एवं आर्थिक रूप से उपयोगी पौधों के नमूने शामिल हैं। सर्वेक्षण के आधार पर यहाँ पायी जाने वाली वन एवं वनस्पतियों का संक्षेप में ब्यौरा निम्नवत है।

1. **उष्णकटिबन्धीय अर्धसदाबहार एवं शुष्क पर्णपाती वन :** इस प्रकार के वन अभयारण्य के कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में पाये जातें हैं। जहां पर वर्षा की मात्रा कम होती है। इनमें वृक्षों की प्रमुख प्रजातियों में हल्डिना कार्डिफोलिया, अल्बीजिया लेबक, आर्टोकार्पस चामा, शोरिया रोबस्टा, मेलाइना अर्बोरिया, एवं लेजरस्ट्रोमिया स्पीसिओसा प्रमुख हैं। वर्षा काल में इस क्षेत्र में झाड़ियों की भरमार हो जाती है जिनमें मुसैन्डा, बुडलेजिया, कोम्ब्रटम, हिप्टेज इत्यादि प्रमुख है।

2. **उष्णकटिबन्धीय अर्धसदाबहार वन :** इस प्रकार के वन अभयारण्य के 800 से 1000 मी.की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। अधिक वर्षा के कारण इन वनो में नम एवं छायादार वनस्पतियों की बहुलता है। इन वनों में वृक्ष की प्रमुख प्रजातियों में डिपटेरोकार्पस टरबिनेटस, शोरिया रोबस्टा, मेलाइना अर्बोरिया, शीमा वालिचीआई, टर्मिनेलिया बेलेरिका, आर्टोकार्पस लकूचा, टेरिगोटा अलाटा, आदि प्रमुख है। लताओं मे स्टीफेनिया गलैन्डूलिफेरा, स्माइलेकस, डायसकोरिया आदि की जातियां एवं कैरेसिया रीपैंडा प्रमुख हैं।

इसके अतिरिक्त पहाड़ी ढलानों पर जंगली केले, जिन्जीबरेसी कुल के पौधे एवं अन्य वनस्पतियां भी प्रमुखता से पायी जाती हैं। नमी के कारण इस क्षेत्र में शाकीय पौधों की भी बहुलता है।

3. **बांस के वन :** अभयारण्य के पश्चिम एवं उत्तरी - पश्चिम भाग में विशुद्ध एवं मिश्रित अवस्था में बांस के वन पाये जाते है। बांसो की प्रमुख प्रजातियों में : मेलोकाना बेसिफेरा, बम्बूसा बालकुआ बम्बूसा न्यूटेन्स, बम्बूसा पैलिडा, डेन्ड्रोकैलेमस हेमिलटोनि एवं साइजोस्टेकियम, पालिर्माफम आदि प्रमुख है।

अभयारण्य में पाये जाने वाले पौधों को उनकी उपयोगिता के अधार पर निम्न वर्गो में बाँटा जा सकता है।

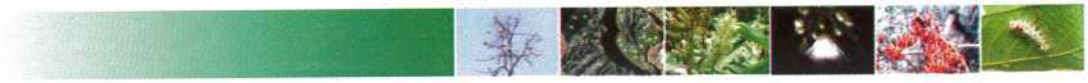

औषधीय पौधे : इनमें प्रमुख हैं सर्पगन्धा (राउल्फिया सर्पेंटिना) एकोरस कैलेमस, ब्राहमी (सेंटेला एशियाटिका) कैलोट्रॉपिस प्रोसेरा, पैसिफलोरा नीलेन्सिस, एसर लेविगेटम, सोलेनम टोरवम, अवरोहा कैरम्बोला, अढाटोडा वैटिका, अमोमम डिल्बेटम, एडिअन्टम फिलीपेन्स, मेसुआ फेरिया, स्माईलेक्स परफोलिआटा एवं कोस्टस स्पेसिओसस, आदि हैं।

ख. खाद्य उपयोगी पौधे : अभयारण्य में पाये जाने वाले पौधों को उनकी खाद्य उपयोगिता के आधार पर निम्न वर्गो में बाँट सकते है।

1. **राइजोम या तना :** बांस प्रजाति के मुलायम तनें, अमोमम डिल्बेटम, कोलोकेसिया, एरिसिमा एवं डायसकोरिया की प्रजातियों के प्रकंद खाद्य हेतु प्रयोग में लाये जाते हैं।

2. **फलों में :** आर्टोकार्पस चामा, आर्टोकार्पस लकूचा, टर्मिनेलिया बेलेरिका, डिलेनिया इंडिका, अम्बेलिया सबकोरियेसिया, एम्बलिका आफिसीनेलिस, मैन्गीफेरा इंडिका, केला, जामुन आदि।

ग. काष्ठोंत्पादक पौधे : यह अभयारण्य क्ई प्रकार के मूल्यवान काष्ठोत्पादक पौधों से भरा है। जैसे : एसर लेविगेटा, आर्टोकार्पस चामा, आर्टोकार्पस लकूचा, टर्मिनेलिया बेलेरिका, डिलेनिया इंडिका, डुआबंगा ग्रैन्डिफलोरा, हल्डिना कार्डिफोलिया, अल्बीजिया लेबक शोरिया रोबस्टा, मेलाइना आर्बोरिया, लेजरस्ट्रोमिया स्पीसिओसा, डिप्टेरोकार्पस, टरबीनेटस एवं मेसुआ फेरिया आदि। इसके अलावा बांस की कई जातियाँ भी यहां प्रमुखता से मिलती हैं।

घ. उपयोगी पौधें की जंगली प्रजातियां : अभयारण्य में कृषि उपयोगी पौधों की कई जंगली जातियां प्रचुरता से उपलब्ध हैं। जैसे : आर्टोकार्पस, साइट्रस, कमेलिया, म्यूसा, कोलोकेसिया, अमोमम, सिन्नामोमम, करक्यूमा, गारसिनिआ, पाइपर एवं जिन्जीबर की अनेक जंगली जातियां ।

अभयारण्य में पाये जाने वाले कुछ जीवजन्तु :

इस अभयारण्य में पाये जाने वाले प्रमुख जंगली जीव-जन्तुओं जैसे स्तनधारियों में बाघ, हाथी, बारासिंग्हा, हिरन, भालू एवं बन्दर प्रमुख है। सर्पो में अजगर एवं कोबरा नाग बहुलता से मिलता है। पक्षियों में हार्नबिल, मोर, ऊल्लू व हिलमैना प्रमुख हैं।

———————

वृक्ष हमें फल-फूल दें
नदी सुनाए गान ।
पर्यावरण विशुद्ध हो
यही देश की शान ।।

भारतीय हरितोद्भिद्की (Bryology) के प्रेरणास्त्रोत – स्व० प्रो० राम उदार (1926-1985)

सुशील कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

भारतीय हरितोद्भिदकी पर शोध कार्यो की गंभीरता से शुरुआत स्वर्गीय प्रो० शिवराम कश्यप ने की थी जिसके कारण उन्हें भारतीय हरितोद्भिदकी विज्ञान के जनक के रूप में जाना जाता है। पर आज वास्तव में यह जिन बुलंदियों को छू रही है उसका श्रेय स्वर्गीय प्रोफेसर राम उदार को जाता है।

स्व० प्रो० राम उदार का जन्म 1 दिसंबर 1926 को उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के बेलारी नामक गॉव के एक धार्मिक हिन्दू परिवार में हुआ था। अपनी कुशाग्र बुद्धि के कारण इन्होंने सभी परीक्षाओं को सम्मानपूर्वक उत्तीर्ण किया। इनकी प्रारंभिक शिक्षा एंग्लो संस्कृत हाईस्कुल, बस्ती तथा राजकीय इंटर कालेज, फैजाबाद से हुई । तदुपरांत ये लखनऊ विश्वविद्यालय में स्नातक के छात्र के रूपमें दाखिल हुए और 1948 में वनस्पति शास्त्र की स्नातकोत्तर परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। स्नातकोत्तर करने के तुरंत बाद इन्होने 1948 में ही लखनऊ के शिया कालेज में व्याख्याता के रूप में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया और कुछ ही महीने बाद इसी वर्ष इनको लखनऊ विश्वविद्यालय में व्याख्याता पद पर नियुक्ति मिली। इसी विश्वविद्यालय में इन्होने 1967 में रीडर और 1981 में प्रोफेसर पद धारण किया और अन्तिम समय तक इसी पद पर कार्यरत रहे।

प्रो० राम उदार ने हरितोदिभद विज्ञान के क्षेत्र में शोध कार्यो की शुरूआत स्व० प्रो० एस० के०पांडे, जो कि स्व० प्रो० शिवराम कश्यप के शिष्य थे, के निर्देशन में की। इन्होंने वर्ष 1959 में जब पीएच० डी० की उपाधि प्राप्त की तब तक ये अपने आपको इस क्षेत्र में स्थापित कर चुके थे। इनके भारतीय हरितोद्भिद विज्ञान के क्षेत्र में योगदान को देखकर इनकी थेसिस का मूल्यांकन करने वाले विश्व के दो महान हरितोदिभदज्ञों, डा० ए० जे० सार्प और डा० मारग्रेट फुलफोर्ड ने इनकी भरपूर सराहना की थी।

वैज्ञानिक जगत में ख्याति इनसे ज्यादा समय तक दूर न रह सकी और वह समय बहुत जल्द ही आया जब प्रो० पंचानन माहेश्वरी ने इन्हें एक विशेष व्याख्यान के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय में आमंत्रित किया। तदुपरांत ये पेलियोबाटनिकल सोसायटी के फेलो चुने गये और दो बार इसी सोसायटी के उपाध्यक्ष रहे। वर्ष 1985 में इनको भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी का फेलो (F.N.A) चुना गया। प्रो० उदार ने भारतीय हरितोद्भिद् सोसायटी (Indian Bryological Society) की स्थापना की तथा इसके संस्थापक अध्यक्ष बने और इस पद को जीवनपर्यत सुशोभित किया।

अपने गुरू को आदर्शो एवं कार्यो से प्रेरणा लेकर प्रो० उदार ने जिस अथक परिश्रम और निष्ठा से कार्य किया उसी के परिणामस्वरूप लखनऊ विश्वविद्यालय की ब्रायोलोजिकल लेबोरेटरी भारतीय हरितोद्भिदकी (Indian Bryology) के प्रमुख केंद्र के रूप में स्थापित हुयी एवं अंतराष्ट्रीय स्तर पर उभर कर सामने आयी। इन्होने लगभग 200 शोध पत्र विभिन्न राष्ट्रीय तथा अंतराष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित किए और इसके

साथ साथ दो किताबें "An introduction to Bryophyta" स्नातक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी तथा "Bryology in India" जिसमें की वर्ष 1976 तक भारतीय हरितोद्भिदकी में हुए कार्यो की विवेचना की गयी है, भी लिखी। इन्होनें लगभग 63 नयी जातियों की खोज तथा बहुत सारी जातियां भारतवर्ष से प्रथम बार रिपोर्ट किया। इनके तथा इनके शिष्यों द्वारा भारतीय हरितोद्भिदकी के क्षेत्र में किये गये योगदानों में, आर्डर कैलोब्राएल्स (Calobryales) और बक्सबाउमिएलस (Buxbaumiales) की भारत से खोज, मोनोग्राफिक स्टडीज ऑन इण्डियन मेटेजरिएसी (Metzgeruaceae) अन्यूरेसी (Aneuraceae), फॉसम्ब्रोनिएसी (Fossombroniaceae), नोटोथाइलेसी (Notothylaceae), फ्रुलानिएसी (Frullaniceae), रेडुलेसी (Redulaceae), पोरिलेसी (Porellaceae), लाइफ हिस्ट्रीज ऑफ एथालामिया पिंग्विस (Athalamia pinguis), कैलीकुलेरिया क्रिस्पुला (Calycularia crispula) तथा किवखर्टस की बहुत सारी जातियों मे बीजाणु संवर्धन (sporeling development), रिजेनरेशन (regeneration) इत्यादि प्रमुख है।

प्रो० उदार एक प्रकृतिप्रेमी वनस्पतिविज्ञानी थे। इनको वनस्पतियों से विशेषकर हरितोद्भिदों (bryophytes) से विशेष लगाव था, जिसके लिए इन्होंने भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों का अनेकों बार भ्रमण किया और वहां से बहुत सारे हरितोद्भिदों का संग्रह किया, जो कि आज भी लखनऊ विश्वविद्यालय में उनकी अमूल्य धरोहर के रूप में सजा कर रखे हैं। इनके कुशल निर्देशन में 10 शिष्यों नें शोध ग्रंथ लिखकर पीएच. डी. की उपाधियां अर्जित की हैं। इस उदार अध्यापक तथा महान हरितोद्भिदज्ञ का देहावसान 1985 में हुआ।

भारतीय हरितोद्भिद्की (Indian Bryology) में जब तक शोध होता रहेगा इस महान विभूति का नाम अमर रहेगा और इनके द्वारा किया गया योगदान एवं कार्य शोधार्थियों को प्रेरणा देता रहेगा।

———————

प्राण वायु के हैं वृक्ष आधार।
करें न हम इनका संहार।।

ये प्रदूषित जल और वायु।
कम करते हैं सब की आयु।।

वृक्ष से है जीवन का नाता।
अन्त समय तक साथ निभाता।।

धार्मिक समारोह की उपयोगी वनस्पतियाँ एवं उनका संरक्षण

बिपिन कुमार सिन्हा एवं विवेक नारायण सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

मानव एवं प्रकृति का सदैव से ही अटूट सम्बन्ध रहा है। मानव ने सदैव अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु वनस्पतियों का साहारा लिया है। आदिकाल में भोजन की पूर्ति से लेकर सभ्यता के विकास के साथ जैसे-२ मनुष्य की आवश्यकताएं बढ़ती गयी, वह वनस्पतियों पर निर्भर होता गया। ज्ञान के विकास के साथ उसने वनस्पतियों के गुणों को पहचाना अैर उसे अपनी संस्कृति में ढाला। भारतीय संस्कृति में मनुष्य के जन्म से मृत्यु तक के समस्त सोलहों संस्कार, धार्मिक आयोजन, व्रत त्योहार, पूजा विधान पौधों के उपयोग के बिना अपूर्ण है। कुछ वनस्पतियों जैसे तुलसी, नीम, पीपल, बरगद, बेल ऑवला आदि ने तो अपने गुणों के कारण ''''पवित्र वृक्ष'' की संज्ञा प्राप्त की है तथा इनमें देवताओं का वास माना जाता है। इनके अतिरिक्त केला, आम, कुश, धान, जौ केसर दूब, तिल आदि का प्रयोग समस्त धार्मिक आयोजन में होता है।

पौधों के समस्त भागों जैसे फूल, फल, पत्ती, जड़ का उपयोग उनके औषधीय व आध्यात्मिक गुणों के कारण किया जाता है। पुष्प को तो विशेष स्थान प्राप्त है। समस्त देवी-देवताओं की पूजा अर्चना धार्मिक आयोजन इनके बिना अधूरे है। देवी सरस्वती को श्वेत कमल, देवी लक्ष्मी को रक्त कमल, भगवान शंकर को मदार, देवी दुर्गा को लाल पुष्प प्रिय हैं। कामदेव की प्रिय पांच पुष्पों को उनका पांच बाण कहते हैं, और ये 'प्रेम' के प्रतीक माने जाते हैं, ये है कुमुदिनी, अशोक, आम, चमेलीं एवं निलोटपाला।

आम, अशोक, केला, व नारियल की पत्तियों एवं तनों का प्रयोग विशेष आयोजनों में जैसे सजावट व तोरण बनाने में किया जाता हैं। दक्षिण भारत में नारियल व सुपारी के पुष्पक्रम का प्रयोग सजावट में बहुतायत से होता है। नारियल का फल को ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश का प्रतीक माना जाता है। अण्डमान निकोबार द्वीप समूह में साइकस रम्फाई व पिन्नेगा मैनिआई की पत्तियों का उपयोग तोरण द्वार सजाने में होता है।

भारत के विभिन्न भागों में पूजन व धार्मिक कार्यो में प्रयुक्त होने वाली प्रमुख वनस्पतियॉ व उनके वानस्पतिक नाम निम्नवत हैं :

क्रसं.	वनस्पतियॉ	वानस्पतिक नाम	उपयोग
1	ऑवला	Emblica officinalis	हिन्दुओं का पूज्य वृक्ष, फल व पुष्प पूजन में प्रयुक्त होता है,
2	चन्दन	Santalum album	पूज्य वृक्ष जो शीतलता का प्रतीक है। लकड़ी तिलक, पूजन व हवन में प्रयुक्त होती है,
3	बेल	Aegle marmelos	इसकी पत्तियों भगवान शिव को अर्पित की जाती है।
4	सुपारी	Areca catechu	फल धार्मिक कार्यो में व पत्तियां सजावट के काम मे आती है।
5	कदंब	Anthocephalus cadamba	पूज्य वृक्ष, क्योंकि श्रीकृष्ण इसी वृक्ष के नीचे विश्राम करते थे, पीले फूल पूजा में व गहनों के रूप में प्रयोग किये जाते हैं।
6	नीम	Azadirachta indica	वृक्ष की पूजा की जाती है तथा इसमें देवी के वास की मान्यता है,

7	भोजपत्र	Betula utilis	प्राचीन पांडुलिपियॉ इनके पत्तों पर अॅकित हैं अतः पवित्र मानी जाती है।
8	रूद्राक्ष	Elaeocarpus sphaericus	पुष्प पूजन में बीजों की माला पहनने से आध्यात्मिक शांति का आभास होता है।
9	सलाई	Boswelia serrata	इसका गोंद हवन में प्रयोग होता है।
10	पलास	Butea monosperma	पुष्प अर्पण हेतु व लकड़ी पूजन व हवन में प्रयोग होती है।
11	परिजात	Nyctanthus arbotristis/ Erythrina vairegata	पुष्प पूजन में प्रयोग होते है। ऐसी मान्यता है कि यह चिरयौवन प्रदान करने वाला वृक्ष है।
12	कचनार	Bauhinia variegata	इसके सुन्दर पुष्प देवताओं को चढ़ाए जाते हैं।
13	सिरिस	Albizia lebbeck	यह भगवान बुद्ध का प्रिय वृक्ष है अतः पुष्प उपनर चढ़ाए जाते हैं।
14	सेमल	Bombax ceiba	लाल फूल देवताओं को चढ़ाए जाते हैं।
15	चिरोंजी	Buchnania lanzan	बीज हलवा आदि मधुर प्रसाद में डालते हैं।
16	पीपल	Ficus religiosa	ये हिन्दुओं के पवित्र वृक्ष है, ऐसी मान्यता है कि इन पर देवताओं का वास है।
17	बरगद	Ficus benghalensis	ये हिन्दुओं के पवित्र वृक्ष है, ऐसी मान्यता है कि इन पर देवताओं का वास है।
18	कमला	Mallotus philippensis	इसे स्त्रियों सुहाग वृक्ष के रूप में पूजती हैं, व फलों पर उपस्थित लाल पाउडर को मॉग में लगाती हैं।
19	आम	Mangifera indica	लकड़ी व पत्ते वन में, फल व पत्तें अन्य धार्मिक कार्यों में प्रयुक्त होते हैं।
20	जयंत	Sesbania grandiflora	कार्तिक माह में इसके फूल से पूजन होता है।
21	जलपतरी	Drypetes roxburghii	इसके बीजों की माला बनाके लम्बी आयु के लिये मातायें अपने बच्चों को पहनाती हैं।
22	जोलपई	Elaeocarpus floribundus	सफेद पुष्प व फल पूजा में प्रयोग किये जाते हैं।
23	बकाइन	Melia azedarach	इसके पुष्प पूजन में व वृक्ष मंदिरो में छाया के लिए लगाते हैं।
24	रक्तचंदन	Pterocarpus santalinus	बीज हार में पिरोकर सजावट हेतु व लकड़ी चंदन की तरह प्रयोग होती है।
25	शमी	Prosopis cineraria	यह हिन्दुओं का पवित्र वृक्ष है, पत्तियों व टहनियों सभी धार्मिक कार्यो में प्रयोग की जाती है।
26	अशोक	Saraca asoca	माता सीता लंका में इसी वृक्ष के नीचे रही थी, बौद्ध धर्म के लोग भी इसे पूजते हैं पुष्प पूजामें उपयोगी है।
27	साल	Shorea robusta	इसका गोंद हवन सामग्री बनाने में प्रयोग होता है।

(ख) **शाक व झाड़ी** : निम्न झाडियॉ भी धार्मिकरूप से महत्वपूर्ण हैं –

क्रसं.		वानस्पतिक नाम	उपयोग
1	तुलसी	Ocimum sanctum	यह सबसे पवित्र पौधा है व इसकी पत्तियों के बिना कोई पूजा सम्पन्न नहीं होती।
2	केसर	Crorcus Sativus	पूजा समारोह में प्रसाद को सुगन्धित करनें के लिए प्रयोग करते है।
3	अडूस	Adhatoda zeylanica	इसके सफेद पुष्प पूजा में प्रयोग होते है।
4	वियोलिता	Barleria	इसके पीले पुष्प भगवान शंकर को चढ़ाये जाते हैं।
5	मदार	Calotropis procera	पुष्प की माला व फल शंकर जी को चढ़ाये जाते हैं।
6	धतुरा	Datura metel	,,
7	नींबु	Citrus Medica	फल व फूल पूजा में प्रयोग होते हैं।
8	पान-कपूर	Clausena pentaphylla	पत्ते व खुशबुदार फूल पूजन में उपयोगी।
9	गन्धराज	Gardenia latifolia	सुगन्धित फूल पूजन में उपयोगी।
10	अनार	Punica granatum	फूल व फल पूजन में उपयोगी।
11	मेंहदी	Lawsonia innermis	इसके पत्ते को पीस कर स्त्रियॉ पूजा के समय हाथों को रंगने हेतु लगाती हैं।
12	गुड़हल	Hibiscus rosa-sinensis	सुन्दर लाल फूल ईश्वर को चढ़ाते है।
13	जाती	Ixora coccinia	पौधे मंदिर प्रांगन की शोभा हेतु व फूल चढ़ाने के लिये प्रयोग होता है।
14	कमल	Nelumbo nucifera	पौधे मंदिर प्रांगन की शोभा हेतु व फूल चढ़ाने के लिये प्रयोग होता है।
15	कामनी	Murraya paniculata	पौधे मंदिर प्रांगन की शोभा हेतु व फूल चढ़ाने के लिये प्रयोग होता है।
16	पीली कनेर	Thevetia pervuiana	पौधे मंदिर प्रांगण की शोभा हेतु व फूल चढ़ाने के लिये प्रयोग होता है।
17	गुलाब	Rosa indica	पौधे मंदिर प्रांगण की शोभा हेतु व फूल चढ़ाने के लिये प्रयोग होता है।
18	शरद चम्पा	Talauma hadgsonii	पौधे मंदिर प्रांगण की शोभा हेतु व फूल चढ़ाने के लिये प्रयोग होता है।
19	निर्गडु	Vitex negundo	पौधे मंदिर प्रांगण की शोभा हेतु व फूल चढ़ाने के लिये प्रयोग होता है।
20	धावयी	Woodfordia fruticosa	पौधे मंदिर प्रांगन की शोभा हेतु व फूल चढ़ाने के लिये प्रयोग होता है।
21	नागदोना	Artemisia vulgaris	सुगन्धित पत्तियां पूजन में प्रयोग होती है।
22	भाँग	Cannabis sativa	पत्तियॉ पीस कर पेय बनाते है व शिव जो की शिवरात्रि पूजन में चढ़ाते है।
23	बॉस	Bamboosa sp.	यह हिन्दुओं के सभी संस्कारों में प्रयोग होता है।

24	हल्दी	Curcuma domestica	समस्त शुभ अवसरों पर प्रयोग होती है।
25	जौ	Hordeum vulgare	बीज पूजा व हवन में प्रयोग करते हैं,
26	धान	Oryza sativa	बीज पूजा व हवन में प्रयोग करते हैं,
27	तिल	Sesamum indicum	"
28	सिघाड़ा	Trapa bispinosa	"

(ग) **लतायें** : निम्नलिखित लताओं के पुष्प व फलों का प्रयोग विभिन्न धार्मिक आयोजनों में होता है–

क्रसं.	वनस्पतिक	वानस्पतिक नाम	उपयोग
1	कंटीली चम्पा	Artabotrys speciosus	पीला पुष्प चढ़ाने के व फल सुगन्धित तेल निकालने के काम आता है।
2	नागपट	Lasiobema scandens	इसकी छड़ी साधू व फकीर लेकर चलते है, तथा ऐसी मान्यता है कि इसे धारण करने से सांप कभी हमला नही करता।
3	मालझन	Bauhinia vahlii	इसकी पत्तियों को नवरात्र मे देवी दुर्गा पर चढ़ाते है।
4	अपराजिता	Clitoria biternata	इसके नील पुष्प बंगाल में सभी धार्मिक आयोजन में प्रयोग होते हैं।
5	खीरा	Cucumis sativa	इसके फल बहुत शुभ माने जाते हैं
6	अनन्तमूल	Oxystelma esculentum Hemidesmus indica	मान्यतानुसार देवी के पेय सोमरस में इन दोनों पौधों के सत्व का प्रयोग करते है।
7	सोमलता	Ephedra gerardiana	"
8	माधवीलता	Hiptage benghalensis	इनके सुगन्धित पुष्पों का प्रयोग पूजा अर्चना में किया जाता है।
9	लौंगलता	Pergularia odoratissima	इनके सुगन्धित पुष्पों का प्रयोग पूजा अर्चना में किया जाता है।
10	चमेली	Jasminum arborescens	इनके सुगन्धित पुष्पों का प्रयोग पूजा अर्चना में किया जाता है।

उपरोक्त सभी वनस्पतियॉ भारतीय समाज में सदियों से अनवरत प्रयोग में है, तथा अपने गुणों व उपयोगिता के कारण आकर्षण व श्रद्धा का केन्द्र बनी हुयी हैं। इन वनस्पतियों का हमारी संस्कृति से जुड़ने का मुख्य कारण था, कि हमारे प्राचीन ऋषियों–मनीषियों ने इनमें उपस्थित औषधीय तत्वों को पहचाना और ऐसा माध्यम बनाया जिससे कि मानव जगत के उपयोग में आने के साथ साथ संरक्षण भी प्राप्त कर सकें। अनेकों औषधीय गुणों की धारक इन वनस्पतियों का इतने उपयोग के बाद भी संरक्षित होना इस बात का द्योतक है कि वर्षो पहले हमारे मनीषियों ने जिस वैज्ञानिक युक्ति का प्रयोग किया वह सर्वथा उपयुक्त थी। आज भी हमारे देश की अनेको जनजातियॉ सैकड़ो पावन वनों को संरक्षित किये हुए हैं जिसे उनके पूर्वजों ने धर्म से जोड़ कर रखा था। अतः यह हमारा भी नैतिक दायित्व होता है कि हम इन वनस्पतियों के साथ साथ अपने सम्पूर्ण पर्यावरण को सुरक्षित रखें जिससे कि हम अपनी संतति को एक स्वस्थ व सुरक्षित पर्यावरण प्रदान कर सकें।

———————

हिमालय की पीड़ा

नन्दलाल तिवारी
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

हिमालय को भारत की शान कहा जाता है क्योंकि इसका प्राकृतिक खजाना ही इसकी शोभा बढ़ाती है। परन्तु आज यह क्षेत्र आशंकाओं तथा अत्याचार से ग्रस्त है। विगत दिनों में आये भूकम्प से अभी निपटा ही नहीं था कि इसका अधिकांश वन क्षेत्र आग की लपेट में आ गया। कुछ वर्षों पहले यहॉ मालया जैसे भूस्खलन हुआ था जिसमें दर्जनों लोग मौत के मुँह में समा गये। इन सभी घटनाओं को देखते हुए इसे 'हिमालय की पीडा' नही तो और क्या कहेंगे?

इस क्षेत्र में आग लगने की समस्या वर्षो पुरानी है। इसपर काबू पाने के लिय प्रतिवर्ष अनेक योजनॉए बनती है परन्तु तत्काल आवश्यकता होने पर ऐसी सारी योजनाएँ निष्क्रिय हो जाती है तथा हमारी प्रकृति की बहुमूल्य सम्पदा देखते ही देखते नष्ट होती जा रही है। वर्ष 1999 में पिछले वर्षो की पुनरावृत्ति उत्तरप्रदेश के पर्वतीय क्षेत्र आग की लपेट के भेंट चढ़े थे। प्रकाशित खबरो को यदि सच माना जाय तो यह हिमालय की पीडा नही बाल्कि हमारी ही हृदय विदारक पीड़ा है। हमारे आखों के सामने हमारी वन-सम्पदा नष्ट हो रही है और हम कुछ भी नहीं कर पा रहे है। इसके लिये भी हम ही जिम्मेदार है। इसका मुख्य कारण अत्यधिक क्षेत्र विस्तार। वन कर्मियों के अभाव के कारण इस पर काबू पाना सम्भव नहीं हो पा रहा है। आज स्थिति यह है कि बढ़ता तापमान एवं वर्षा के अभाव के कारण इस पर सहज तरीके से काबू पाना सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में वन-संरक्षण नीति, सरकारी इच्छा शक्ति, वन कर्मियों की भूमिका एवं अनिवार्य सुरक्षा साधनों की आपूर्ति इन सभी के ऊपर गंभीर चिन्तन अनिवार्य है। इनके अभाव में तथा वन-सम्पदा के संरक्षण की दिशा में कारगर हल ढूँढ पाना असंभव नहीं तो मुश्किल अवश्य है। इस क्षेत्र से आये दिन जंगलों में आग लगने की खबर आती रहती है।

गर्मी के मौसम में ऐसी घटनायें चरम सीमा पर होती है। ऐसे मौके पर वन अधिकारियों के वक्तव्य भ्रम के साथ-साथ हास्यप्रद भी होती हैं। प्रशासन द्वारा पूर्ण सहयोग न मिल पाने की बात प्रायः सुनने में आती है। हमें मालूम है कि यह घटना अप्रैल से जून के बीच ही घटतीं है क्योंकि इस समय सूखे पत्ते वनो में फैले होते हैं। एक जगह आग लग जाती है तो वह एक सिरे से दूसरे सिरे को अपने चपेट में ले लेती है। परन्तु कभी-कभी इस तरह की घटनाएँ वन माफियाओं के द्वारा किया जाता है। इसका मुख्य कारण वन की कीमती लकड़ियो को इसी मौके पर ले जाना सुविधाजनक हो जाता है। इससे होने वाली क्षति का भौतिक अनुमान लगाया जा सकता है परन्तु इसके दूरगामी कुप्रभावो का आकलन सम्भव नहीं हो पाता। आग लगने से सिर्फ वन ही नष्ट नही होते वृक्षों से गिरे बीज जो उचित तापमान एवं नमी के कारण नए पौधों का रूप धारण कर सकते थे वह भी नष्ट हो जाते है। साथ ही साथ दुर्लभ पौधों एवं जीवों की बहुत सी प्रजातियाँ विलुप्त हो जाती हैं। जंगली जीव-जन्तु तथा जमीन के अन्दर रहने वाले प्राणी भी इसके शिकार होते हैं। इस तरह से हमारा पर्यावरण खतरे की ओर बढ़ता जा रहा है एवं अन्धाधून्ध वन्य सम्पदा दोहन के चलते पर्यावरण सन्तुलन भी डगमगा गया है। आग की घटनाओं के अलावा वन का विनाश होने का एक कारण बढ़ती जनसंख्या औद्योगीकरण का विस्तार, फसलों के लिये वन-क्षेत्रों का अधिग्रहण एवं अवैध कब्जा तथा साथ ही राजनीतिक हस्तक्षेप ने इन समस्याओं को और भी जटिल बना दिया है।

आज के वैज्ञानिक युग मे जल, जंगल एवं जमीन की महत्ता को नकार देना अपनी मौत को बुलावा देना जैसा है। ये प्रकृति के ऐसे वरदान है जिसके बिना मानव अस्तित्व की कल्पना ही नही की जा सकती।

ऐसे में वनों की महत्ता, उसकी संरक्षण नीतियों में आयी शिथिलता एवं विनाश की भयानक स्थिति के प्रति विशेष रूप से सचेत होना अति आवश्यक है। वायुमण्डल के लगातार बढ़ते तापमान के पीछे वायुमण्डल में कार्बनडाई आक्साइड की अधिकता है जो कि वन-वृक्षों की संख्या में लगातार हो रही कमी का परिणाम है। ऐसी स्थिति में हमे ना केवल वनों के विनाश पर रोक लगाने होंगे बाल्कि राष्ट्रीय वन नीति के नियमों को और प्रभावी बनाना होगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि वन-विनाश की निरंतर चल रही इस समस्या को रोका जाय। पारस्परिक सहयोग के बिना इस समस्या पर काबू पाना सम्भव नहीं है। सरकारी नीतियों, राजनैतिक धंधेबाजी, वनमाफियाओ एवं आम जनता में जब तक इस समस्या के प्रति कारगर समझ पैदा नहीं हो जाती तब तक इस पर पूर्ण रूप से काबू पाना सम्भव नहीं है। अगर ऐसा ही चलता रहा तो हमारा पर्यावरण असंतुलित हो जायेगा। ग्लोबल वार्मिंग के चलते आज हमारे हिमालय क्षेत्र का ग्लेशियर 131 वर्ग कि.मी. प्रतिवर्ष की दर से पिघलता जा रहा है जो हमारे लिए बेहद खतरनाक संकेत है।

वन-विनाश और पर्यावरण संतुलन को बनाये रखने तथा हिमालय की पीड़ा कम करने के लिए निम्न बातो पर विशेष ध्यान देना होगा :–

1. भूमि एवं जल संसाधनो की सुरक्षा के लिये सरकारी नीतियाँ मजबूत करनी होगी।
2. अन्धाधून्ध व्यावसायिक कटान को रोकना होगा।
3. वन पंचायतों एवं वृक्ष रोपण कार्यों में आम जनता की भागीदारी को बढ़ाना होगा।
4. धरेलू उद्योग हेतु वनों की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए उसका संतुलित उपयोग करना होगा।
5. असंतुलन तथा प्रदूषण के प्रति सामान्य जनता एवं प्रशासन का ध्यान आकर्षित करना होगा।
6. पर्यावरण एवं वनों से खिलवाड़ करने वाली शक्तियों के प्रति कड़े से कड़े दंड देने की व्यवस्था करनी होगी।
7. स्थानीय जनता को वनों से लाभ-हानि के सम्बन्ध में उचित ज्ञान देना होगा।

———————

शोर, धुँआ, गन्दगी
और नहीं बढ पायेंगे।
शस्य श्यामला धरती होगी
इतने पेड़ लगायेंगे।।

विशाल रेत का पहाड़ एक अविस्मरणीय अनुभव

श्रीमती सोनाली श्री पिवलटकर
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे

विशाल रेत का पहाड़

असंतुलित पर्यावरण से पृथ्वी पूरी तरह से त्रस्त है। इसके परिणाम से वनस्पति, प्राणी और मानव पूरी तरह से प्रभावित हुए हैं। पर्यावरण की समस्या आज एक विचित्र रूप धारण कर चुकी है इसलिए हमें इस समस्या का हल ढूढना ही होगा। बढ़ती हुई आबादी, बढ़ते हुए वाहन–उनसे निकलता धूआँ, प्रदूषण और (CO2) कार्बन डायऑक्साईड एवं कार्बन मोनोआक्साइड (CO) का बढ़ता परिणाम, पर्यावरण को नष्ट कर रहा है। अपनी पृथ्वी के बाहरी स्तर पर ओजोन (O3) नामक संरक्षित आवरण है जो कि एक (Filter) छलनी जैसे काम करता है, अभी बढ़ते हुए प्रदूषण की वजह से ये आवरण नष्ट या लुप्त होता जा रहा है। इसकी वजह से, पहले जो सूर्य से निकलती (Ultraviolet) अल्ट्रा वायलेट किरणें ओजोन नामक सतह से छनकर मनुष्य तक पहुँचती थी, वे अब सीधे पृथ्वी पर आ रही हैं। इन किरणों की वजह से शरीर को अनेक चर्म रोगों का सामना करना पड़ता है। इन किरणों की वजह से शरीर के पेशियों में (mutations) परिवर्तन होते है; जिसकी वजह से शरीर में कैन्सर नामक पीड़ा कुछ हद तक हो सकती है। कैन्सर होने का एक कारण परिवर्तन भी हो सकता है यानी कि शरीर के किसी एक भाग में अचानक पेशियों बढ़ना ''म्यूटेशन'' (mutation) का भाग है। इसी प्रदूषण की वजह से अनेक श्वास की बीमारियाँ, साइनस्, सिरदर्द आदि हो सकती हैं।

बढ़ती हुई आबादी के कारण जमीन कम पड़ रही है इसलिए मानव समुंदर की सतह को कम करके, उसमें भराव डालकर उस पर इमारते खड़ी कर रहा है। वायुशिफ वन ((Mangroves) समुंदर या द्वीपों के किनारे जहाँ समुद्री पानी उपजाऊ मिट्टी के साथ समागम करता है वहाँ ये वायुशिक वन पाये जाते है।) काटकर नष्ट करके वहाँ बड़ी बड़ी इमारते या मॉल्स् तैयार किए जा रहे हैं। इसका जीता-जागता उदाहरण मुंबई शहर है। जहाँ लाखों इमारतें समुंदर के ऊपर बनाई हुई हैं। मीठी नदी जो मुंबई शहर के पीने के पानी का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है उसे भराव डालकर कम किया जा रहा है। इसकी वजह से मुंबई शहर में बारिश के दिनों में यह पानी जान-लेवा बन जाता है। किन्तु इसी भराव की वजह से जो वजन / दबाव समुंदर पर पड़ रहा हैं, इसे समुदंर तथा पृथ्वी कब तक सहेंगे? कभी न कभी तो, अपना रोष प्रकट करेगें ही। इतनी लाखो करोड़ों इमारतें समुंदर में बनाई गई हैं, ये सिर्फ अपने भारत देश तक सीमित नही हैं बल्कि कई ऐसे देश हैं जों पानी के ऊपर बनाये गये हैं – जैसे दुबई का कई भाग, वेनेजुएला आदि। इन सब का परिणाम कभी ना कभी तो दिखेगा ही। इन सब का परिणाम है ''ग्लोबल वार्मिंग'' (Global Warming)। अंटार्कटिक की बर्फ पिघलने लगी है; समुंदर के पानी की सतह बढ़ रही हैं। समुंदर क्ई मीटर ऊपर उठ रहा है और जो भी शहर

समुंदर के समीप है; समुंदर उसे अपने अंदर लील रहा हैं। इसका एक उदाहरण है–सुंदरवन का कुछ भाग जो समुंदर में डूब गया है (नेचर : 2007) हिमालय की उँचाई कम हो रही है; हिमालय पिघल रहा है। और ये बर्फ, भारत में जो प्रमुख नदियाँ हैं उनेक लिए एक संकट बन सकता है।

26 दिसंबर 2004 को जो विध्वंसकारी भूकंप आया उसका केन्द्र बिंदु पानी के अंदर पाया गया था, इसी वजह सें सुनामी की लहरे उठी और इन सबका असर भारत में भी दिखाई दिया। सुनामी लहरें वास्तव में उठने वाली विध्वंसक ज्वारीय लहरें होती है जो 750 कि, मीटर प्रति घंटे तक होती हैं। ये लहरे किनारों पर पहुँच कर, 15-20 मीटर तक ऊँची हो जाती हैं (नेचर : 2005)। मैं 26 दिसंबर 2004 को अरबी समुंदर में मुंबई के तट पर अपना, समुंदर के शैवालो का संकलन कर रही थी। समुंदर में जाते समय ज्वारभाटा का अंदाजा देखकर ही जाना उचित होता है और ये समय देखकर ही मैं समुंदर में उतरी थी। मैं निश्चित थी क्योंकि ज्वारभाटे का समय देखकर ही समुंदर में गयी थी। समुंदर भी शांत था। अचानक जो लहरें शांत थी वो जोरो सें उठने लगी और तुफानी वेग से समुंदर के तट तक आने लगी और उन लहरों के साथ समुद्री प्राणी भी बाहर आने लगे जैसे समुद्री साँप और ईल (Eel fish) नामक मछलियाँ। जब मैंने ये देखा तो भै डरकर समुंदर के बाहर आगयी। जब मैं वापस अपने विश्राम गृह (guest house) में पहुँची तब मुझे पता चला कि सुनामी आयी है और इस सुनामी का मैने बहुत नजदीक से अनुभव किया था। भारत में अंडमान-निकोबार तथा दक्षिण समुद्री तटीय क्षेत्रों में इसका ज्यादा असर पाया गया था। अंडमान-निकोबार द्वीप खण्ड अपने अक्ष से आंशिक रूप से खिसक गया है और इसके परिणाम सें दक्षिण तटीय क्षेत्र करीब 5 मीटर पानी में डूब गया और उत्तरी क्षेत्र 10 मीटर तक पानी के उपर उठ गया है। 29 अगस्त 2005 को अमेरिका के समुद्री तटीय क्षेत्रों में शक्तिशाली समुद्री तूफान ''केटरीना'' और ''रीटा'' ने भी तबाही मचा दी थी।

इसके जैसे क्ई साल पहले भारत में सुनामी आयी थी। उसका जीताजागता नमूना ''विशाल रेत का पहाड़'' है। यह ''विशाल रेत का पहाड़'' रत्नागिरी जिले में दापोली नामक गाँव के समीप है। दापोली शहर से 25-30 किलो मीटर दूर केलशी नामक गाँव स्थित हैं, इस गाँव में हम रेत का पहाड़ देख सकते हैं। जब मैं शैवालों का संकलन करने सिंधुदूर्ग जिले में गयी समुद्री शैवालों का संकलन करने जनवरी मास 2007 में दापोली। यह पहाड़ दापोली गाँव के एकदम बाहर स्थित है। यहाँ दो पर्वतों के बीच समुद्री समुद्री जल बहता है। यहां इसलिए समुद्र का पतला भाग पर्वतों में प्रवेश करता है। लेकिन इस स्थान पर ज्वार भाटे का समय देखकर ही जाना उचित है। गाँव के बाहर जाने के बाद बाई ओर सृष्टि का यह एक अप्रतिम रूप ''विशाल रेत का पहाड'' देखने को मिलता है। इसकी ऊचाँई 35-40 फीट है और लगभग 1 किलो मीटर इसका घेरा है। यहाँ का पानी कम होने के कारण मैं सीधे रेत का पहाड़ पर जा सकी और वहा पहुँची तो मुझे विश्वास नही हुआ कि कितनी बड़ी लहरे उठी होंगी जो अपने साथ इतनी टन रेत बहाकर ले आयी होंगी। इससे ये साबित होता है कि भारत में भी पहले कभी सुनामी आयी थीं।

यह ''विशाल रेत का पहाड़'' अब विलुप्त होने के कगार पर है क्योंकि सामने वाले पहाड़ जो बाणकोट तथा वेलास में स्थित हैं यहाँ से केलशी तक रास्ता बनाया जा रहा है जो दापोली शहर को जोड़ने वाला है। इस पहाड़ के नीचे पुरातन संस्कृति के क्ई सुराग छुपे हुए हैं,जिन पर अध्ययन चल रहा है। इस पहाड़ की मखमली, आरामदायी रेत पर फिसलना अपने आप में एक अनोखा एवं आनन्द दायी अनुभव देता है।

———————

रक्तचाप के निदान में सहायक औषधीय पौधे

अनन्त कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण , हावड़ा

आज का युग जैसे जैसे विकास की ओर बढ़ रहा है मानव भी उसी प्रकार अपने आप को आर्थिक व शारीरिक रूप सें सुदृढ़ बना रहा हैं। आज मानव क्ई प्रकार के रोगों पर अपना प्रभुत्व बना चुका है। लेकिन मानव के जीने के तौर तरीकों ने उसको हृदय सम्बन्धित रोगों से ग्रसित कर दिया है जोकि आज भी मृत्युदर को बढ़ाने का प्रमुख कारण है।

वैसे तो मनुष्य हृदय रोगों से बचने के लिए मुख्यतः एलोपैथी चिकित्सा पद्धति के अन्तर्गत आने वाली औषधियों पर निर्भर रहा है परन्तु इन औषधियों के लगातार व्यवहार ने उसको अन्य कुप्रभावों से ग्रसित कर दिया हैं। जैसै–डाइयूरेटिक्स और बीटा ब्लोकर्स के निरन्तर प्रयोग से शरीर में उपस्थित इलैक्ट्रोलाइट्स का स्तर बिगड़ जाता है। हम जानते है कि पौधों का प्रयोग प्राचीन काल से औषधि के रूप में होता आ रहा है। अतः मनुष्य इन गुणकारी पौधों का प्रयोग हृदय सम्बन्धित रोगों में कर रहा है। ये औषधीय पौधे रक्तचाप नियंत्रण के साथ-साथ मानसिक तनाव एवं शरीर में उपस्थित वसा को भी नियंत्रित करते हैं।

प्रस्तुत लेख में इसी संदर्भ में व्यवहार मे आने वाले कुछ औषधीय पौधों का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। वे पौधे निम्नवत हैं।

1. कोलियस पोर्सकोहाई :

इस पौधे को क्षेत्रीय भाषा में बड़ा काबाटूथूर कहते हैं। यह मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में पाया जाता है। यह लैमिनेसी कुल का पौधा है। इसकी जड़ों को रक्तचाप को कम करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इसकी जड़ों से फोर्सकोहलिन (कोलेनोल) नामक क्रियातत्व निकाला जाता है। यह क्रियातत्व उच्च रक्तचाप को कम करने में सहायक हैं।

2. करकूमा लोंगा :

इस पौधे को क्षेत्रीय भाषा में हल्दी, हलुद, टरमेरिक, आदि नामों से जाना जाता हैं। यह भारतीय उपमहाद्वीप के अधिकांश भागों में उगाया जाता है। यह ज़िन्जिबरेसी कुल का पौधा है। इसके प्रकन्द का प्रयोग सब्जी और औषधि के रूप में किया जाता हैं। यह सुगन्धित और शक्तिवर्धक होता है। प्रकन्द की बाहरी परत से करकुमिन नामक रंगीन तत्व निकाला जाता है, जो रक्तचाप को नियंत्रित करने मे सहायक है।

3. एम्बलिका ओफिसिनेलिस :

यह आमला, अम्बिआ, अमलकी आदि नाम से जाना जाता है। यह यूफोरबिएसी कुल का पेड़ है। यह दक्कन क्षेत्र, समुद्रीय क्षेत्र और कश्मीर में उगाया जाता है। इसके सूखे फल के बीज, पत्तियाँ, जड़ की छाल व पुष्प से औषधियाँ बनाई जाती है। इसका ताजा फल मूत्रल व मृदुरेचक है। इसके फल के गूदे से फाइलेम्बलिन तत्व निकाला जाता है, जो केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करता है। जिसके फलस्वरूप उच्च रक्तचाप में कमी आ जाती है।

4. इनूला रेसीमोसा :

यह पुष्करमूल, मानो व मनरूटा नाम से जाना जाता है। यह जम्मू कश्मीर में उगाया जाता है। यह

भारतीय हिमालयन क्षेत्र में बहुतायत रूप में पाया जाता है। यह कम्पोज़िटी कुल का पौधा है। इसकी जड़ कम से कम 3-4 से.मी. लम्बी, मुलायम खुशबूदार व पीली होती है तथा औषधि के रूप में प्रयोग की जाती है। जड़ो से प्राप्त आवश्यक तेल रक्तचाप के निदान में सहायक होता है।

5. ओसिमम सेन्कटम :

यह पौधा तुलसी, थुलसी व कारूम आदि नाम से जाना जाता है। यह लैमिएसी कुल का पौधा है। प्राचीन ग्रन्थों में तुलसी को रक्त साफ करने वाला पौधा बताया गया है। इसके बीज, जड़ व पत्तियों का प्रयोग औषधियों को बनाने के लिये किया जाता है। इससे प्राप्त आवश्यक तेल से युजीनोल नामक क्रियातत्व निकाला जाता है, जो उच्चरक्तचाप और मानसिक तनाव को कम करता है।

6. टेरोकारपस मारसूपियम :

इस पौधे को क्षेत्रीय लोग बीजासल, मूर्गा, वांगुर, येगिसा व विजयसार आदि नामों से पुकारते हैं। यह फैबेसी कुल का पौधा है। इसकी लकड़ी का क्षेत्रीय लोग बदन-दर्द, छाती-दर्द और मधुमेह जैसे रोगों की औषधि बनाने में प्रयोग करते हैं। यह भारतीय उपमहाद्वीप के पर्वतीय क्षेत्रों में पाया जाता है। यह 30 मी. लम्बा पेड़ होता है। इसमें एल्कोलोइड और स्टीरोइड जैसे पदार्थ होते हैं, जो रक्तचाप को नियंत्रण में रखते हैं।

7. राउवोल्फिआ सर्पेन्टाइना

यह सर्पगन्धा, अवलपोरी, छोटा चाँद व डोग रूक्मी आदि नाम से जाना जाता है। यह एपोसाइनेसी कुल का पौधा है। यह महाराष्ट्र, सिक्किम व बंगाल में पाया जाता है। इसकी जड़ों का प्रयोग तीव्र मानसिक तनाव की औषधि बनाने में करते हैं। इसकी जड़ों से अजमेलाइन, सर्पेन्टाइन, सर्पेन्टाइनिन, रीसरपाइन नामक क्रियातत्व निकाले जाते हैं, जो उच्चरक्तचाप को कम करने का गुण रखते हैं।

8. सासूरीआ कॉस्टस :

टर्मिनेलिया अर्जुना :

यह अर्जुन कावा, पेरे व थहाका आदि नाम से जाना जाता है। यह केम्बीटेसी कुल का वृहत वृक्ष है। यह उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और गुजरात मे पाया जाता है। यह 66 फीट ऊँचा होता है। इसकी छाल का प्रयोग 500 बी. सी. से हृदय रोगों की औषधि बनाने में किया जाता रहा है। छाल के चूर्ण में विभिन्न प्रकार के क्रियातत्व होते है जैसे अर्जुनाइन, अर्जुनेटिन, अजुनोसाइड, अर्जुनिक अम्ल इत्यादि। ये तत्व हृदय की रक्षा और मानसिक तनाव को कम कर सकने में सक्षम हैं।

टर्मिनेलिआ अर्जुना के अलावा टर्मिनेलिआ चेबुला,टर्मिनेलिया बेलेरिका भी रक्तचाप को नियंत्रित करने में सहायक हैं। उपर्युक्त पौधों के अतिरिक्त अन्य औषधीय पौधे जिनका उपयोग हृदय सम्बन्धित रोगों में किया जाता है, वह इस प्रकार हैं–

क्रमांक	वनस्पतिक नाम	कुल	क्षेत्रीय नाम	प्रयोग में लाए जाने वाला भाग
1	केसिआ एबसस	लेगुमिनोसी	चकसू, कुलान्थिका	पत्तियाँ व बीज
2	बूटिया सुपर्बा	लेगुमिनोसी	केसू, लता, पलाश	बीज व पुष्प
3	एरिथ्रिना वेरीगेटा	लेगुमिनोसी	पलधा, मदार, कन्दमदार	छाल, पत्तियाँ फल

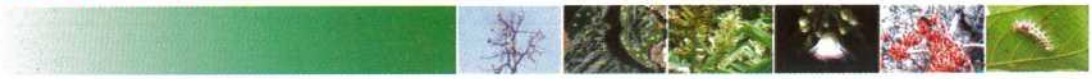

4	जैट्रोफा करकस	यूफोरबिएसी	जंगली अरण्डी	बीज व गूदा
5	क्रोटन कोडेटस	यूफोरबिएसी	सवाका, सोनापुला	जड़, पत्तियाँ व बीज
6	आइपोमिआ डिजिटाटा	कॉनवोलवुलेसी	भुई-कुरमा, विदारी	ट्यूबर
7	मधूका इन्डिका	सेपोटेसी	महुआ, मधुका	तना व छाल
8	हेलिओट्रोपियम इण्डिकम	बोरेजिनेसी	हातीसुरा	बीज
9	हिबिसकस रोज़ा साइनेन्सिस	मालवेसी	गुड्हल, जप्पा	संपूर्ण, पौधा (जड़ के अतिरिक्त)
10	लिट्सिआ मोनोपेटला	लोरेसी	मैदा	तने की छाल
11	पाइपर बीटल	पाइपरेसी	पान, बीटल, तम्बूल	जड; पत्तियाँ व फल
12	साइनोडॉन डेक्टाइलोन	ग्रेमिनी	दूब, दूर्बा	जड़ व पौधे का रस
13	डेन्ड्रोबियम मैक्री	ऑर्किडेसी	जैवन्ती, जिवन्ती	संपूर्ण पौधा, जड़ व तना
14	डोकस केरोटा	अम्बेलीफेरी	गाजर, गर्जरा	जड़ व बीज

पर्यावरण को ऐसा सँवारें।
मांगे फल मोती मिल जावे।।

धरती, वायु, पर्वत पानी
पर्यावरण के अंग।
इन सबकी रक्षा करें
जीव-जन्तुओं के संग।।

भारतीय वनस्पति उद्यान स्थित प्रमुख स्मारक

नन्दलाल तिवारी
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

भारतीय वनस्पति उद्यान की स्थापना अंग्रेंजी कम्पनी इष्ट इंडिया द्वारा 6 जुलाई 1787 में कर्नल राबर्ट किड द्वारा किया गया। इस उद्यान की स्थापना करने का मुख्य उद्देश्य, इसमें आर्थिक महत्व के पौधों की खेती करना, उनके पूलों, फलों, जड़ों तथा महत्वपूर्ण भागों का निर्यात कर धन कमाना था। परन्तु धीरे-धीरे अपने इस उद्देश्य को बदलते हुए इस उद्यान को वनस्पति विज्ञान एवम उससे मिली हुई विषयों का प्रमुख केन्द्र बना दिया गया, तथा वैज्ञानिकों के लिए पौधों का सर्वेक्षण एवम् संरक्षण का प्रमुख केन्द्र बना। सन् 1856 में इसे रायल बोटानिक गार्डेन के नाम से जाना गया तथा आजादी के बाद भारत सरकार द्वारा इसका नाम 26 जनवरी 1950 में परिवर्तित कर भारतीय वनस्पति उद्यान, हावडा रखा गया जो राज्य सरकार के अधीन था। बाद में सन् 1963 में इसे पुनः केन्द्र सरकार ने अधिग्रहण कर लिया। इस उद्यान के अन्दर कुछ प्रमुख स्मारक बने हुए हैं जो इस प्रकार हैं।

(1) **कर्नल राबर्ट किड स्मारक** :–इस उद्यान के प्रथम अध्यक्ष एवम् संस्थापक कर्नल राबर्ट किड थे। इनका जन्म 1746 ई० में हुआ था। ये कम उम्रे में भारत आये तथा यहाँ सिपाही के पद पर नियुक्त हुए। 1786 ई० में फोर्टविलियम में सैनिक परिषद के अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुये। उसी समय यह सोच आया कि एक उद्यान बनाना चाहिए जहाँ अधिक से अधिक पेड़-पौधे हों एवम् उनसे धन कमाया जा सके। यह सोच कर्नल किड ने अपने गवर्नर जनरल सर जान मैकफर्सन को उद्यान बनाने के प्रस्ताव के रूप में उनके पास भेजा। गवर्नर जनरल ने उनके इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कम्पनी के लंदन स्थित मुख्यालय के पास भेज दिया तथा मुख्यालय उनके इस प्रस्ताव को समर्थन के साथ कार्य शुरु करने का आदेश दिया। इस प्रकार कर्नल राबर्ट किड ने हुगली नदी के किनारे 300 एकड़ जमीन लेकर उद्यान बनाने का कार्य आरम्भ किया। किड साहब को वनस्पति विज्ञानका कोई विशेष ज्ञान नहीं था। पौधों के प्रति गहरा लगाव था जिसके कारण वे इस उद्यान के अन्दर विदेश से पौधे मंगबाकर यहाँ पर लगबाए एवम् इनके लगातार परिश्रम के चलते 300 एकड़ का यह उद्यान हरा भरा दिखने लगा। कुछ बर्षो बाद

किड स्मारक

ही कर्नल राबर्ट अपने स्वास्थ्य को लेकर परेशान रहने लगे। इनकी मृत्यु 18 मई 1793 ई० में हो गयी तथा इनके पार्थिय शरीर को कलकत्ता में दफन कर दिया गया। इनके इस महान कार्य के लिए डा० विलियम राक्सवर्ग ने इनके यादगार में सन् 1795 ई० में एक स्मारक बनवाया। यह स्मारक सफेद संगमरमर से बना हुआ है जिसके उपरी भाग पर गोलाकार कलश है, जिसपर नक्काशीका कार्य किया हुआ है।

इस स्मारक में महिलाओं तथा पुरुषों द्वारा जल लाने तथा जमीन को सींचने का दृश्य बना हुआ है, एक पुरुष (माली) द्वारा एक नाव में पौधा लाना, एक फावड़ा एवम् अनाज की बलियों को दिखाया गया है जो यह दर्शाता है कि वनस्पति को उगाने के लिए क्या-क्या करना चाहिए तथा उससे कितना प्रेम एवम् परिश्रम करना चाहिए। यह स्मारक हमारे उद्यान के ठीक बीच में अवस्थित है। इसके चारो तरफ सड़के हैं जिनके नाम किड, हुकर, रायोस्टोनिआ तथा एन्डर्सन एवेन्यू रखे गये हैं। इस स्मारक की सुरक्षा के लिए इसे गोलाकार परिधि में लोहे की जालियों से घेरा हुआ है तथा इसके अन्दर की खाली जगहों को हरे-भरे घासों एवं फूलों से सजाया गया है।

राक्सबर्ग स्मारक

(2) **डा० विलियम राक्सबर्ग स्मारक :** कर्नल किड की मृत्यु के बाद सर विलियम राक्सबर्ग इस उद्यान के प्रथम वैज्ञानिक अध्यक्ष बने। इनका जन्म सन् 1751 इ० में हुआ था। ये भारत में सन् 1776 में मद्रास स्थित इस्ट इंडिया कम्पनी के अन्दर एडिनबर्ग विश्वविद्यालयमें मेडिसिन की उपाधि प्राप्त करने के लिए आये तथा इसके बाद यहीं पर नौकरी करने लगे। नौकरी करने के समय डा० कोपेनिंग के सम्पर्क में आये जो कि एक नबाब के अधीन कार्य करते थे। दोनों की आपसी मित्रता ने भारतीय वनस्पति को आगे बढ़ाया तथा ''प्लांट्स् आफ दी कोस्ट आफ कोरोमण्डल'' तीन खण्डों में डा० राक्सबर्ग के नाम से प्रकाशित हुआ। डा० राक्सबर्गने 1792 में दक्षिण भारत के पौधों का अध्ययन किया। डा० राक्सबर्ग 29 नवम्बर 1793 ई० में अध्यक्ष के पद पर नियुक्त हुए एवं इस उद्यान के पूर्ण विकास के लिये उद्यान के अन्दर रहना ही उचित समझा । उन्होंने हुगली नदी के किनारे अपने रहने के लिए एक भव्य भवन का निर्माण करबाया जो आज भी उनकी याद दिलाती है। डा० राक्सबर्ग कठिन परिश्रम के चलते अस्वस्थ्य रहने लगे जिसके कारण उन्हें अपनी मातृभूमि जाना पड़ा, स्वास्थ्य ठीक होने के बाद पुनः वे वापस आ गये और 2500 से भी अधिक पौधों का वर्णन ''फ्लोरा इंडिया'' नामक पुस्तक में किया जो आज भी भारतीय वनस्पति के पुस्तकालय में संग्रहित है। डा० राक्सबर्ग अपने स्वास्थ्यके चलते त्यागपत्र देकर पैतृक न्यूयार्क पैलेश चले गये जहाँ 18 फरबरी सन् 1815 ई० में उनकी मृत्यु हो गयी। उनके मरने के पश्चात उनके मित्रों द्वारा उनकी यादगार में सन् 1822 ई० में एक स्मारक बनवाया गया जो विशालवट वृक्ष एवम् द्विशतवार्षिकी द्वार के मध्य में स्थित है। यह स्मारक छः स्तम्भो वाली छत के नीचे है। जिस पर लैटिन भाषा में लिखा है जिसका अंग्रेजी अनुवाद इस उद्यान के भूतपूर्व निदेशक फादर सान्तापाउ ने सन् 1964 ई० में करके एक पत्थर के टुकड़े पर लिखवाकर स्थापित करवाया। इसके अलावा इनके नाम पर राक्सवर्ग एवेन्यू तथा भवन भी है।

(3) **डा० नाथानियल वालिच स्मारक** :– डा० नाथानियल वालिच का जन्म 1786 ई० में हुआ था। ये 1807 में डेनिस मेडिकल सर्विस में सेवा में नियुक्त हुये तथा सन 1813 ई० में जब यह ब्रिटिश प्रशासन के अधीन आया तब परिस्थितिवश वही पर बतौर डाक्टर के रूप में कार्य करने लगे। डा० वालिच अपने बिगड़ते स्वास्थ्य को ठीक करने के लिए मारीसस चले गये एवम् लौटने पर पुनः कलकता आकर अपना कार्य करने लगे। डा० फ्रन्सिस हेमिलटन के इस उद्यान के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देने के बाद डा० वालिच को सन् 1817 ई० में स्थायी रूप से अध्यक्ष बनाया गया। डा० वालिच सन 1815 ई० से लेकर 1846 ई० तक इस उद्यान के विकास के लिए अनेक कार्य किए तथा कुशल वनस्पतिज्ञ रूप में उभर कर सामने आए। ये भारत के विभिन्न भागों सहित नेपाल के पौधों का भी अध्ययन किए, जिसमें पौधों की अनेक प्रजातियों की खोज हुई तथा इनके कार्यो को 3 खण्डों में प्रकाशित किया गया जिसका नाम ''प्लान्टी एसियाटिक सरिपोर्स'' है। डा० वालिच के कठिन परिश्रम एवं बढ़ते उम्र के चलते इनका स्वास्थ्य खराब रहने लगा तथा अप्रैल 1854 ई० में इनकी मृत्यु हो गयी। इनके यादगार में इनके मित्रों द्वारा किड तथा किलेट एवेन्यू के संयोग स्थल पर लगभग पाँच मीटर ऊँचा स्मारक बनवाया गया जो चार नं डिविजन में है तथा उनके नाम पर एक सडक का भी नामकरण किया गया, जो कालेज गेट से लेकर स्काट एवेन्यू तक आता है।

वालिच स्मारक

(4) **डा० विलियम ग्रिफिथ** : डा० विलियम ग्रिफिथ का जन्म सन् 1810 ई० में हुआ था। ये लन्दन विश्व विद्यालय में पढ़े तथा सन् 1832 ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी के सहायक राज्य चिकित्सक के पद पर आसीन हुए। कुछ समय बाद इनका चयन वर्मा के पौध तथा उद्भिद् अन्वेषण के लिए हुआ। वे डा० वालिच की सहायता से आसाम स्थित चाय के जंगलों के पौधों का अन्वेषण किये। इसके अलावा ये रंगुन, खासी की पहाड़ियाँ भूटान, अफगानिस्तान मलाका आदि स्थानों के पौधों के उपर भी कार्य किए। ये इस उद्यान में सन 1842 से 1844 के मध्य कार्यवाहक अध्यक्ष रहे, उस समय डा० वालिच अवकाश पर गये हुए थे। डा० वालिच के अवकाश समाप्ति के बाद ये पुनः मलाका में पौधों के उपर अन्वेषण करने चले गये। ये वनस्पति विज्ञान में विशेष रूचि के साथ-साथ स्तनपायी, कीट एवं पक्षी विज्ञान के प्रति भी लगाव रखते थे। इनकी मुख्य पुस्तक ''आइकोन्स प्लांटियम एसियाटिक'' एवम्

विलियम ग्रिफिथ स्मारक

''पामस आफ ब्रिटिश ईस्ट इंडिया'' है। अपने कठिन परिश्रम के कारण रोगों से बुरी तरह आक्रान्त होकर फरबरी 1845 में इनकी मृत्यु हो गयी। इनकी मृत्यु के बाद इनके मित्रों ने स्मारक बनवाया जो कि संगमरमर से बना, जिसकी ऊँचाई 1.70 मीटर है। यह इस उद्यान के 16 नम्बर अनुभाग में स्थित है। इसके अलावा इनके नाम पर उद्यान के अन्दर ग्रिफिथ एवेन्यू भी है जो कि विशाल ताड़गृह के सामने है।

(5) **डा० विलियम सालियज कुर्ज :** डा० कुर्ज का जन्म 1834 में जर्मनी में हुआ था। सन 1856 ई० में ईस्ट इंडिज की डच सेना में कार्य किए। ये 1856 से 1863 ई० तक तेजसमान की सहायता से बोटानिक गार्डेन में व्यूटेन जातिके पौधों की पहचान तथा नामकरण में मदद किए। सन 1864 ई० में सेना सेवा से अवकाश प्राप्त कर डा० एण्डरसन के निवेदन पर डा० कुर्ज पादपालय के संरक्षक पद पर कार्यरत हुए। डा० कुर्ज अपनी वनस्पति योग्यता के कारण दो बार अण्डमान द्वीप जाकर वहाँ की वनस्पति तथा वहाँ की मूल्यवान वन सम्पदा इमारती लकड़ियों का अध्ययन किये। इनकी प्रमुख पुस्तक ''फारेस्ट फ्लोरा आफ वर्मा'' दो खंडों में सन् 1877 ई० में प्रकाशित हुई। अचानक स्वास्थ्य खराब होने के कारण अल्प आयु में ही जनवरी 1878 ई० में इनकी मृत्यु हो गयी। डा० कुर्ज 1864 से 1878 ई० के मध्य लगभग 50 वैज्ञानिक शोध पत्र प्रकाशित किये। इनके यादगार में इनके मित्रों द्वारा एक स्मारक बनाया गया जो उद्यान के 9 न० (पुष्प उद्यान) के पीछे है। इसकी ऊँचाई 1 मीटर है जिस पर अंग्रेजो में लेख लिखित है। इसके आलावा इनके नाम पर कुर्ज एवेन्यु भी है।

सालियज कुर्ज स्मारक

विलियम जैक स्मारक

(6) **डा० विलियम जैक :-** डा० जैक का जन्म जनवरी 1795 ई० में स्काटलैंड में हुआ था। 17 वर्ष की उम्र में एफ आर सी एस परीक्षा पास करने के बाद वे सन 1813 ई० में कलकत्ता के दमदम छावनी में कैप्टन के रूप में नियुक्त हुए तथा शीघ्र ही नेपाल सेना के साथ भेज दिए गये। नेपाल से लौटने के बाद उनका स्थानान्तरण दानापुर (पटना) कर दिया गया। उसी समय भारतीय वनस्पति उद्यान के तत्कालीन अध्यक्ष डा० वालिच के साथ इनका सम्पर्क हुआ। डा० वालिच इनके कार्यों से प्रभावित हुए तथा आभार व्यक्त करते हुए अपने शोध पत्रों में इनके कार्यों का उल्लेख किया। डा० जैक सुमात्रा तथा उसके आस पास की प्राकृतिक सम्पत्तियों का अेन्वषण किये। उन्होंने सन 1818 ई० से सन 1821 ई० तक पैाध अध्ययन भी किया। इनके वनस्पति के प्रति बहुमूल्य योगदान एवं कार्यों का लेखाजोखा पुस्तक में भी प्रकाशित हुआ जिसका नाम मलायन मिसेलेनिजस था तथा इसके अतिरिक्त और भी कई शोध पत्र प्रकाशित हुये।

अचानक 1822 ई० में मलेरिया के कारण 15 सितम्बर को इनकी मृत्यु हो गयी। इनके यादगार में इनके शुभचिंतक एवम् मित्रों द्वारा इनका स्मारक बना दिया गया जो उद्यान के अनुभाग संख्या 17 में बृहद ताड़गृह के पूर्व में है जिसकी उँचाई 1.7 मीटर है, यह संगमरमर पत्थर से निर्मित है। इसके चारों तरफ अभिलेख है जिसमें यह लिखा हुआ है कि फेज नामक समुद्री जहाज में इनके द्वारा लिखित ऐतिहासिक तथा वनस्पातिक पांडुलिपि 6 फरवरी सन 1824 ई० में जलकर नष्ट हो गयी। डा० जैक के नाम पर भी उद्यान में जैक एवेन्यू है जो उनकी याद दिलाता है।

इन वैज्ञानिकों के अलावा इस उद्यान के वैज्ञानिक सहयोगियों के सम्मान में भी स्मृति स्वरूप झीलों का नामकरण क्रमशः इस प्रकार है, लेरम, शादीर, जनार्दन, दीवान, किंग तथा प्रेन लेक। रास्तों का नाम हामील्टास, फॉक्नर्स, हुकर, जितेन्द्र मोहन पाथ है। भवनों के नाम कालीपद विश्वास हाल, जितेन्द्र नाथ सेन हाल है। विशाल बट वृक्ष का मुख्य तना नष्ट होने के बाद उसके स्मृति स्वरूप एक स्मारक बनाया गया जो यह दर्शाता है कि मुख्य तना इसी स्थान पर था जिसे 1981 में बनाया गया है जिसपर बट वृक्ष से सम्बन्धित संक्षिप्त विवरण हिन्दी, बंगला और अंग्रेजी में दिया गया है। इस उद्यान के दो सौ बर्ष पूरा होने के उपलक्ष्य में द्विशतवार्षिकी द्वार बनाया गया है तथा एक स्तम्भ उद्यान के अनुभाग 16 में बनाया गया उसके ठीक पीछे एक पेड़ भी लगाया गया है। उद्यान के अन्दर केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय में स्थित सभागार का नाम डा० विश्वनाथ मुदगल सभागार रखा गया है।

———————

खुशहाली है हरियाली से।
वन-उपवन की रखवाली से।।

* * *

काटोगे यदि हरी डाल।
साँसों से होगे कंगाल।।

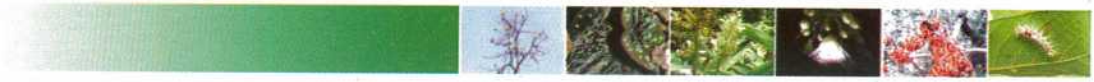

पर्यावरण समाचार (संकलन)

संजीव कुमार
भा. व. स. कोलकाता

राजस्थान के पथमेड़ा गौशाला के प्रधान संरक्षक आध्यात्मिक संत के अनुसार उच्चरक्त चाप का मरीज प्रातः गाय की पीठ प्रतिदिन पन्द्रह मिनट तक सहलाएं तो उच्चरक्त चाप ठीक हो सकता है। गाय की हुंकार से वायुमंडल में उपस्थित हानिकारक जीवाणु नष्ट हो जाते है। इस प्रकार गाय स्वास्थ्य और कृषि के साथ पर्यावरण के लिए भी अतिगुणकारी है।

स्त्रोत दैनिक जागरण

वन अनुसंधान संस्थान ने दिल्ली में काफी पुराने वृक्षों की सेहत सुधारने के लिए देश में अपनी तरह के पहले वनस्पति ट्रीटमेंट अभियान पर कार्य शुरू कर दिया है। इंडिया गेट के आस पास स्थित वृक्षों का सर्वेक्षण किया जा रहा है। वृक्षों के इलाज किये जाने के साथ ही आवश्यकता पड़ने पर उनका रिप्लेसमेंट भी किया जाएगा। यह अभियान यदि देश भर में चलाया जाए तो कितना अच्छा हो।

स्त्रोत दैनिक जागरण

अनुपयोगी समझे जाने वाले केले के तने के रेशों से कपड़ा और चटाई जैसी चीजों का निर्माण किया जा सकता है। केले के तने का जल भी उपयोगी है। इस जल में जिंक और आयरन की पर्याप्त मात्रा होने से कपड़ा डाई और पेंट में उसका उपयोग किया जा सकता है।

स्त्रोत दैनिक जागरण

त्रिफला तीन प्राकृतिक उत्पादों हरड़, बहेड़ा और आंवला का चूर्ण होता है। यह आंत संबंधी बिमारियों के इलाज के लिए कारगर है। इसलिए त्रिफला पैंक्रियाज (अग्न्याशय) में कैंसर के इलाज में काफी मददार साबित हो सकता है।

स्त्रोत दैनिक जागरण

समुद्री जीव डॉल्फिन, सील व व्हेल काफी समझदार मानी जाती है। इनकी नजर भी पैनी होती है। समुद्र के अन्दर की किसी भी हलचल को झट पकड़ लेती है। वह आवाज निकालकर अन्य जीवों को सावधान कर देती है। इसलिए रूसी अपने देश के समुद्री ठिकानों पर समुद्री जीव तैनात करेगी।

स्त्रोत सन्मार्ग

असम राज्य पूरे भारत में बांस के पैदावार के लिए प्रसिद्ध है। परन्तु इस साल इस राज्य के वृक्षों में बांस फूल नजर आने से राज्यवासी काफी दुखी है। वे दुर्भिक्ष का खतरा देख रहे है। बांस के फूल क्रिकेट के गेंद के आकार के होते है जिसे चुंहें बड़े चाव से खाते है। ये चुहें बांस के फूल को खाने के साथ साथ कोमल बांस व उनके पत्तो को चट कर जाते है। बांस इस राज्य को आर्थिक रूप से मजबूती प्रदान करती है। चुहें यही नही रूकते बांस की पैदावार को चट करने के बाद खेतों मे भी घुस जाते है और फसलों को खा जाते और नष्ट भी कर देते है। इसलिए असमवासी बांसो में फूल देखने से घबरा जाते है।

स्त्रोत इको आफ इंडिया

संसदीय समिति के अनुसार विश्व की आश्चर्यो में से एक ताजमहल वातावरण में लम्बित धुलीकणों के कारण (suspended particulate matter) अपनी सफेदी खोती जा रही है और पीली पड़ती जा रही है।

स्रोत इको आफ इंडिया

किसानों द्वारा खेतों में पैदावार बढ़ाने के लालच में फसल को खाने वाले कीट पतंगों को मारने के लिए अन्धाधुन्ध कीटनाशक दवाओं का प्रयोग कर रहे है। कुछ कीटनाशक दवाओं का फसलों पर छिड़काव करना बिल्कुल मना है। नतीजन इन कीटों को भोजन समझकर कर खाने वाले चिडिया हजारों की संख्या में मारे जा रहे है। बंगलादेश के जैसोर जिलें के एक गांव में एक किसान ने करीब पांच हजार चिडियों को मरे हुए पाया। इनकी चोंचो में रक्त था। वे कीटनाशक दवा से मरे कीटों को खाने से मर गये थे। बंगलादेश का जैसौर जिला का यह इलाका बागवानी के लिए प्रसिद्ध है। इसलिए यहां पंछी भी खूब आकर्षित होते है।

स्रोत इको आफ इंडिया

अमेरिका ने भारत से आमों की खरिद पर 18 साल तक पाबन्दी लगा रखी थी। वे आम के फलों को कीटनाशक दवा की मात्रा अधिक होने के कारण नहीं खरीदते थे। इस साल उन्होने अलफान्सों व केशर जाति के आम भेजने के लिए कहा है।

———————

पर्यावरण को डस रहा
प्रदूषण का सर्प विकराल।
पेड़ लगाओं, पौधे उगाओं
बनाओं इसे खुशहाल।।

हरे भरे जंगल कटवाकर
सोचो क्या मिल जाता है।
तुच्छ स्वार्थ पूरे होते
कितना कुछ खो जाता है।।

जिसकी लाठी उसकी भैंस

भगवती प्रसाद उनियाल,
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

पर्वत फोड़े नदिया रोकी
किये धरा के वक्ष पे घात।
अब प्रकृति कहे, मत मुझसे टकरा
तू डाल डाल मैं पात पात।।
उद्योग लगाये, भवन बनाये
मीलों लम्बा जंगल चीरा।
अब नाममात्र को वृक्षरोपण
जैसै ऊंट के मुंह में जीरा।।
वातावरण पटा गैसों से
कहने को चिंतित हर देश।
पर क्योटो संधि धरी ठेंगे पर
जिसकी लाठी, उसकी भैंस।।
है याद कच्छ की बरबादी
हैं याद सुनामी के झटके।
प्रतिरक्षा की पर हालत जैसे
आकाश से गिरे, खजूर पे अटके।।
वृक्ष लगाओं, पर्यावरण बचाओं
एक वृक्ष दस पुत्र समान।
छांव मिलेगी, फल भी मिलेंगे
आम के आम, गुठलियों के दाम।।

———————